अंक 7 : अगस्त,2023
चौ-मासिक, बेंगलूरु

Azim Premji University

अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी

लर्निंग कर्व

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का प्रकाशन

स्वस्थ्य और ख़ुशहाल जीवन के लिए शाला में लालन-पालन भाग-2

सम्पादन समिति

प्रेमा रघुनाथ, मुख्य सम्पादक
अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय,
सर्वे नम्बर 66, बुरुगुंटे विलेज, बिक्कनाहल्ली मेन रोड,
सरजापुरा, बेंगलूरु, कर्नाटक - 562 125

prema.raghunath@azimpremjifoundation.org

शेफ़ाली त्रिपाठी मेहता, सह-सम्पादक
अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय,
सर्वे नम्बर 66, बुरुगुंटे विलेज, बिक्कनाहल्ली मेन रोड,
सरजापुरा, बेंगलूरु, कर्नाटक - 562 125
shefali.mehta@azimpremjifoundation.org

चन्द्रिका मुरलीधर
अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय,
सर्वे नम्बर 66, बुरुगुंटे विलेज, बिक्कनाहल्ली मेन रोड,
सरजापुरा, बेंगलूरु, कर्नाटक - 562 125

chandrika@azimpremjifoundation.org

निमरत खण्डपुर
अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय,
सर्वे नम्बर 66, बुरुगुंटे विलेज, बिक्कनाहल्ली मेन रोड,
सरजापुरा, बेंगलूरु, कर्नाटक - 562 125
nimrat.kaur@azimpremjifoundation.org

सम्पादकीय कार्यालय
सम्पादक, अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी लर्निंग कर्व
अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय,
सर्वे नम्बर 66, बुरुगुंटे विलेज, बिक्कनाहल्ली मेन रोड,
सरजापुरा, बेंगलूरु, कर्नाटक - 562 125
Phone : 080-6614 4900
Fax : 080-6614 4900
Email: publications@apu.edu.in
Website: www.azimpremjiuniversity.edu.in

शोभा लोकनाथन कवूरी
अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय,
सर्वे नम्बर 66, बुरुगुंटे विलेज, बिक्कनाहल्ली मेन रोड,
सरजापुरा, बेंगलूरु, कर्नाटक - 562 125
shobh.kavoori@azimpremjifoundation.org

सलाहकार
हृदय कान्त दीवान, सचिन मुले
एस. गिरिधर, सुधीश वेंकटेश, उमाशंकर पेरिओडी

प्रकाशन समन्वयक
शान्ता के.
शहनाज़ बेगम

हिन्दी अंक सम्पादक
राजेश उत्साही

हिन्दी अनुवाद
एकलव्य फ़ाउंडेशन
समन्वय : प्रतिका गुप्ता

आवरण चित्र
शासकीय प्राथमिक स्कूल, जैतपुर घौशी, उत्तराखण्ड
चित्र सौजन्य : पुरुषोत्तम सिंह ठाकुर

डिज़ाइन
Banyan Tree
98458 64765

हिन्दी अंक लेआउट एवं मुद्रक
आदर्श प्रा.लि. भोपाल
+91-755-2555442

कृपया ध्यान दें :

- ***इस अंक में प्रकाशित लेख मूलत: अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी लर्निंग कर्व (अँग्रेज़ी) अंक 15 अप्रैल, 2023 के लेखों के हिन्दी अनुवाद हैं। मूल अँग्रेज़ी अंक को*** *https://azimpremjiuniversity.edu.in/learning-curve* ***से डाउनलोड किया जा सकता है।***
- ***यह हिन्दी अंक या इसके अलग-अलग लेख*** *https://anuvadasampada.azimpremjiuniversity.edu.in/* ***पर उपलब्ध हैं।***
- ***लेखों में व्यक्त विचार और दृष्टिकोण लेखकों के अपने हैं। अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन या अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।***

'' अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी लर्निंग कर्व, अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का प्रकाशन है। इसका उद्देश्य शिक्षकों, शिक्षक-अध्यापकों, स्कूल प्रमुख, शिक्षा अधिकारियों, अभिभावकों और गैर-सरकारी संगठनों तक ऐसे प्रासंगिक और विषयगत मुद्दों में पहुँच बनाना है जो उनके रोजमर्रा के काम से सम्बन्धित हैं। लर्निंग कर्व शैक्षिक जगत के विभिन्न दृष्टिकोणों, अभिव्यक्तियों, परिप्रेक्ष्यों, नई जानकारियों और नवाचार की कहानियाँ प्रस्तुत करने के लिए एक मंच प्रदान करता है। इसका मूल विचार 'शैक्षणिक' और 'अभ्यासकर्ता' के मध्य सन्तुलन हेतु उन्मुख पत्रिका के रूप में स्थापित होना है।''

सम्पादक की ओर से

डॉ. सोइस की किताब *ओह, द प्लेसेस यू विल गो!* को मैंने उसके प्रकाशन के तीन दशक बाद अपनी सात साल की नई दोस्त को उपहार में देने के लिए ख़रीदा। इसे पलटते हुए मुझे 'तुम सर्वश्रेष्ठ होगे' और 'तुम बाक़ी सबको पीछे छोड़ दोगे' जैसे उद्धरणों के उपयोग पर शर्मिन्दगी महसूस हुई। समय के साथ हमारी संवेदनाओं में कैसे बदलाव हुआ है! कक्षाओं में प्रतिस्पर्धा की जगह सहयोग ने ले ली है। यह चाहे अफ़्रीक़ी दर्शन 'उबुंटू' का असर हो या हमारे अपने 'सद्भावना' के विचार का, अब कक्षाओं में जुड़ाव, बन्धुत्व और समावेश पर ध्यान दिया जाता है।

ख़ुशहाली एक पेचीदा अवधारणा है और हालाँकि आनन्द-केन्द्रित स्कूली संस्कृति इसके केन्द्र में है, लेकिन इसके लिए हर बच्चे पर व्यक्तिगत रूप से बहुत ध्यान देना भी ज़रूरी हो जाता है। बच्चे भावनाओं के स्तर पर कार्य करते हैं। उनकी ख़ुशहाली इस बात पर निर्भर करती है कि स्कूल, शिक्षक, अन्य विद्यार्थी और पूरा परिवेश उन्हें कैसा महसूस कराता है। बच्चों के बीच मौजूद शिक्षकों की कहानियाँ और अनुभव इतने अधिक और विविध प्रकार के हैं कि इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि हम इस मसले पर दूसरे भाग के साथ आपके सामने प्रस्तुत हैं!

इस अंक के सम्पादन के दौरान ऐसे मौक़े आए जब हम भाषा की पेचीदगियों पर ध्यान केन्द्रित नहीं कर सके क्योंकि (लेखों की) विषयवस्तु बेहद गहन थी। हमारे लेखकों ने हमें इस सवाल पर विचार करने के लिए विवश किया कि 'समावेश वास्तव में है क्या?' 'क्या यह केवल विकलांग बच्चों को बाक़ी के साथ पढ़ने देने भर से हो जाता है?' उन्होंने हमें याद दिलाया कि वंचित समुदायों से आने वाले बच्चों के लिए स्कूल ही उनके सम्पूर्ण विकास का एकमात्र स्थान होता है; और यह कि कई सरकारी स्कूलों में ग़ैर-नामांकित बच्चे अपने नामांकित बड़े भाई-बहनों के साथ बड़ी संख्या में स्कूल आते हैं। ऐसे कई सवाल हैं जिनकी वजह से हमें रुककर इस बात पर विचार करना चाहिए कि एक बच्चा जिसे स्कूल से बाहर रखा गया है वह क्या महसूस करता है? जिस बच्चे का पारिवारिक जीवन कलह से भरा हो, वह स्कूल में कैसा महसूस करता है? कोई बच्चा बालों को बिना बनाए स्कूल क्यों आता है? कोई और बच्चा यह क्यों महसूस करता है कि ग़रीब या निचली जाति का होने के कारण उसके घर कोई नहीं आएगा?

संवाद ऐसी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण गतिविधि के रूप में उभरकर आए हैं जिनके माध्यम से कक्षाओं में शिक्षक अपने विद्यार्थियों के जीवन में चल रही बातों को जान सकते हैं। देखने में आया है कि धर्मों या समुदायों के ख़िलाफ़ पूर्वाग्रहों के बारे में तर्कों व दलीलों पर आधारित समूह चर्चाएँ कुछ सामाजिक बाधाओं को तोड़ने में मददगार साबित हुई हैं और शिक्षकों द्वारा बच्चों के साथ व्यक्तिगत और अनौपचारिक बातचीत ने असुरक्षित महसूस करने वाले बच्चों को आगे बढ़ने के लिए भावनात्मक साधन उपलब्ध कराए हैं। एक लेखक ने बच्चों में तनाव के संकेतों को देखने की ज़रूरत पर ज़ोर देते हुए 'ट्रॉमा लेंस' (सदमे/ आघात का नज़रिया) शब्द का उपयोग किया है।

बच्चों को अपने जीवन के अनुभवों के बारे में खुलकर

बात करने में मदद करने के लिए कहानियों की प्रभावशाली भूमिका पर कई लेखकों ने फिर से बल दिया है। किस तरह की कहानियाँ चुनी जाएँ और उनके इर्द-गिर्द किस तरह से संवाद गढ़े जाएँ इसकी सलाह दी गई है। लेखकों ने विभिन्न पहचानों वाले बच्चों के बीच स्नेह, विश्वास और सम्मान को बढ़ावा देने के लिए मिश्रित समूह गतिविधियों के उपयोग पर भी ज़ोर दिया है।

बच्चों को आवश्यक और जीवन को समृद्ध बनाने वाले मूल्यों के प्रति संवेदनशील बनाने के लिए स्कूलों और शिक्षकों द्वारा किए जा रहे प्रयासों के बारे में पढ़कर बेहद ख़ुशी हुई। भाग एक में हमने छत्तीसगढ़ के स्कूलों में लागू की जा रही 'सद्भावना विद्यालय' पहल पर एक लेख दिया था। इस अंक में, हम आपके लिए इन स्कूलों के तीन शिक्षकों के विचार लेकर आए हैं, जो बच्चों को सम्मान, करुणा और सहयोग के आधार पर सम्बन्धों को विकसित करने में मदद करने के लिए अपनी पद्धतियों में सुधार कर रहे हैं।

डॉ. सोइस की किताब मेरे दराज़ में पड़ी है। मुझे अभी भी यक़ीन नहीं है कि मेरी छोटी दोस्त उन असंख्य सम्भावनाओं के विस्मय को महसूस कर पाएगी जो यह किताब उसे दिखाती है या वह दूसरों से बेहतर बनने के उन विचारों को आत्मसात करेगी जो हम नहीं चाहते कि हमारे बच्चों को प्रभावित करें।

इससे पहले कि आप पन्ना पलटें, आपको याद दिलाना चाहूँगी कि यह पत्रिका आपकी है और हम यहाँ आपकी आवाज़ सुनना चाहते हैं, इसलिए अपने बहुमूल्य सुझाव हमें भेजते रहें।

शेफ़ाली त्रिपाठी मेहता

सह-सम्पादक

shefali.mehta@azimpremjifoundation.org

अनुवाद : विजय सेन **पुनरीक्षण :** भरत त्रिपाठी

कॉपी एडिटर : अनुज उपाध्याय

इस अंक में

कक्षा में बन्धुत्व का निर्माण 01
अमन मदान

शिक्षक की ख़ुशहाली पर पुनर्विचार : तनाव और थकान से दूर 05
जवेरिया सलीम

एक शैक्षिक माहौल में बचपन के आघात और उपचार 11
शिवानी तनेजा और सविता सोहित

परिवार के विस्तार के रूप में स्कूल 16
अनिल सिंह

संघर्ष समाधान के लिए सामाजिक-भावनात्मक कौशल 19
अनुजा वेंकटरमन

बच्चों की कहानियों में बच्चों की आवाज़ 23
ज्योति देशमुख और शिवानी तनेजा

इस अंक में

आवाज़ें

प्रोजेक्ट कार्य के माध्यम से सामाजिक-भावनात्मक शिक्षा 27
चिक्कावीरेश एस वी

लैंगिक असमानता से समानता तक : 'सद्भावना विद्यालय' की ओर 32
दीप्ति सिंह राठौर

सामाजिक-भावनात्मक शिक्षा को केन्द्र में रखना : अज़ीम प्रेमजी स्कूल कलबुर्गी 35
फ़रज़ाना बेगम

जो बच्चे बेहतर महसूस करते हैं, वे बेहतर सीखते हैं 39
ललिता यदुवंशी

समावेश का सही मतलब : 'सद्भावना विद्यालय' की ओर 42
सन्ध्या देवी

भेदभाव और बहिष्करण का ख़ात्मा :'सद्भावना विद्यालय' की ओर 45
सावित्री साहू

भावनाओं को नियंत्रित करने के लिए कुछ सरल गतिविधियाँ 48
शालिनी सोलंकी

कमरे में हाथी : सामाजिक और भावनात्मक शिक्षा (एसईएल) के अभाव वाला शिक्षण 52
शुभम रतूड़ी

बच्चों को सुनने का महत्त्व 55
सुकीर्ति लखटकिया

शिक्षकों की फ़िक्र और देखरेख द्वारा एक स्कूल का रूपान्तरण 60
सुनीता सुरेशराव

सीखने की कठिनता वाले बच्चों के लिए सामाजिक-भावनात्मक मदद 63
माला आर. नटराजन

नियमित स्कूलों में विकलांग बच्चे 66
पल्लवी दत्ता

सामाजिक न्याय : सीखने का केन्द्र 71
रागिनी ललित

क्लासरूम विथ अ व्यू नोट्स फ्रॉम द कृष्णमूर्ति स्कूल्स : पुस्तक समीक्षा 75
अंकुर मदान

कक्षा में बन्धुत्व का निर्माण

अमन मदान

इस विचारपरक लेख में, लेखक समानुभूति और भिन्नता को स्वीकार करने के महत्त्व पर प्रकाश डाल रहे हैं जो वयस्कता की तरफ़ बढ़ने और दुनिया में अपनी जगह लेने का हिस्सा हैं। पारम्परिक पक्षपात और पूर्वाग्रहों का होना बहुत सामान्य है जो बच्चे के भावनात्मक विकास को सीमित कर सकते हैं। शिक्षकों और वयस्कों को इस परिपाटी को तोड़ना होगा ताकि बच्चे मुक्त होकर ज़्यादा समावेशी जीवन जी सकें।

मेरे विश्वविद्यालय में कई अलग-अलग समुदाय, वर्ग और जेंडर के विद्यार्थी आते हैं। जब अपनी पढ़ाई पूरी होने के बाद वे लौट रहे होते हैं, तो मैं अक्सर उन्हें अद्भुत बातें कहते सुनता हूँ, जैसे, "मैं 'उस' समुदाय के लोगों से दूर रहता था। लेकिन यहाँ आकर मुझे एहसास हुआ कि वे अच्छे लोग हैं। मैंने उनसे दोस्ती भी की।" मैं उन्हें यह कहते हुए भी सुनता हूँ, "मैंने कभी नहीं सोचा था कि मैं किसी पुरुष/ महिला के साथ सिर्फ़ दोस्त रह सकूँगी/ सकूँगा, पर अब ऐसा होता है।" कभी-कभी, वे यह भी कहते हैं कि उन्होंने ऐसे लोगों से दोस्ती की जो नॉन-बाइनरी जेंडर के हैं।

ऐसा सिर्फ़ मेरे विश्वविद्यालय में ही नहीं हो रहा है बल्कि यह देश भर के स्कूलों और कैम्पसों में हो रहा है। हालाँकि बन्धुत्व की भावना पैदा करने में निश्चित रूप से कई अड़चनें भी हैं। इसे कोई व्यक्ति किस तरह समझता है? लोग अपने डर और नफ़रत पर क़ाबू पाना कब शुरू करते हैं? हम किस तरह इसमें मदद कर सकते हैं और इस प्रक्रिया की रफ़्तार को कैसे बढ़ा सकते हैं?

डर और नफ़रत की कई वजहें हो सकती हैं। कभी-कभी एक समूह द्वारा दूसरे समूह के उत्पीड़न का काफ़ी लम्बा इतिहास होता है। किसी समय मैं एक मोबाइल लाइब्रेरी चलाया करता था जिसे मैं सप्ताह में एक बार एक गाँव के बाहरी इलाक़े में ले जाता था और बहुत ख़ुश था कि कई दलित बच्चे इसमें आ रहे थे। मैंने गाँव के बीचोंबीच बरगद का एक सुन्दर पेड़ देखा और बच्चों को सुझाव दिया कि हम पुस्तकालय को वहाँ स्थानान्तरित कर दें। मैंने उन्हें तर्क दिया कि इस तरह पुस्तकालय में ज़्यादा लोग आ सकेंगे। लेकिन उनके हाव-भाव बदल गए और उन्होंने ज़ोर दिया कि मैं वहाँ न जाऊँ। बरगद का पेड़ ठीक उसी जगह पर था जहाँ दबंग जाति के लोग रहते थे और इन बच्चों को यक़ीन था कि रास्ते में उन्हें तंग किया जाएगा और सताया जाएगा। इसकी बजाय वे वहाँ से दूर रहना ही पसन्द करेंगे।

संसाधनों, प्रभुत्व और सम्मान को लेकर समूहों के बीच होने वाले संघर्ष इस तरह के भय, द्वेष, नापसन्दगी और नफ़रत के कारण हो सकते हैं। कई अलग-अलग इतिहास और सामाजिक परिस्थितियाँ सामाजिक समूहों और जेंडरों के बीच तनाव पैदा कर सकती हैं। अक्सर इसे संगठन व नेता और ज़्यादा हवा देते हैं जिनकी सोच यह होती है कि शत्रुता और भय बढ़ने के साथ उनका रुतबा भी बढ़ जाएगा। संसाधनों के ज़्यादा निष्पक्ष बँटवारे के साथ एक ज़्यादा न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था बनाना अन्तिम हल हो सकता है। इसके साथ, स्कूल और युवा संगठन स्नेह, सम्मान और संवाद की संस्कृति बनाने में और साथ ही इनसे आने वाली समानता की भावना पैदा करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

सहयोग के लिए स्थितियाँ बनाना

जब समूह एक-दूसरे के साथ प्रतिस्पर्धा करते हैं तो डर और अविश्वास सामान्यतः बढ़ने लगता है। हालाँकि, शोध से पता चलता है कि जब अलग-अलग समूह और जेंडर के सदस्य एक साझा लक्ष्य के लिए सहयोग करने के मक़सद से साथ आते हैं, तो वे एक-दूसरे पर भरोसा करना शुरू कर देते हैं और उनका डर कुछ कम हो जाता है। मिसाल के तौर पर, कनाडा के एक अर्थशास्त्री मैट लो ने उत्तर प्रदेश में एक प्रयोग किया जिसमें उन्होंने अलग-अलग जातियों के युवाओं को एक साथ क्रिकेट खेलने के लिए इकट्ठा किया। उन्होंने कुछ टीमें इस तरह बनाईं जिनमें अलग-अलग जातियों के लोग थे और कुछ टीमों में एक ही जाति के खिलाड़ी रखे। उन्होंने देखा कि मिली-जुली टीमों में होने पर अलग-अलग जातियों के खिलाड़ी आपस में ज़्यादा विश्वास रखने लगे और एक-दूसरे को पसन्द करने लगे। कई और अध्ययन भी इस प्रवृत्ति की पुष्टि करते हैं। जब अलग-अलग समुदाय प्रतिस्पर्धी के रूप में सम्पर्क में आते हैं तो उनके सम्बन्ध बिगड़ सकते हैं। हालाँकि, जब वे सहयोगी के रूप में सम्पर्क में आते हैं या जब वे एक साझा लक्ष्य के लिए एक-दूसरे के सहयोग से काम कर रहे होते हैं तो एक-दूसरे के लिए उनका स्नेह और सम्मान बढ़ने लगता है। अमरीकी मनोवैज्ञानिक, गॉर्डन ऑलपोर्ट, 1954 में इस पर ध्यान दिलाने

वाले शुरुआती विद्वानों में से एक थे। उन्होंने बताया कि यह अपने आप नहीं होता है। इसमें अधिकारियों के सहयोग की ज़रूरत होती है वरना चीज़ें बिगड़ सकती हैं। इसमें और मदद मिलती है जब अलग-अलग समुदाय बराबरी की हैसियत से एक साथ आते हैं और दर्जे या प्रभुत्व में बहुत अलग नहीं होते।

समुदाय में बड़े पैमाने पर यह सब करना मुश्किल है। मिसाल के तौर पर, अलग-अलग इलाक़ों में रहने वाले लोगों को एक साथ कैसे लाया जा सकता है? जब वे एक ऐसे सामाजिक ढाँचे का हिस्सा हैं जिसमें एक को दूसरे के सेवक के रूप में काम करना पड़ता है, तो उन्हें बराबर रखकर एक साथ कैसे लाया जा सकता है? या जब लम्बे समय से यह माना जाता रहा है कि महिलाएँ समझ और मिज़ाज में पुरुषों से कमतर हैं?

जब अलग-अलग समूह और जेंडर के बच्चे जीने, सीखने और खेलने के लिए स्कूलों में इकट्ठे होते हैं तो कई सम्भावनाएँ खुल जाती हैं। कई शिक्षकों ने ऐसे खेल आज़माए हैं जिनमें बच्चों को एक-दूसरे का सहयोग करना होता है। उदाहरण के लिए, वे एक जैसी क्षमताओं वाली लड़कियों और लड़कों की टीम बना सकते हैं (अलग-अलग स्तर के कौशलों को मिलाने से उलटा असर हो सकता है!) और उनके बीच कड़वाहट कम हो जाएगी। कई शिक्षकों ने 'सहयोगी ढंग से सीखने' को भी आज़माया है जहाँ बच्चे एक साझा उद्देश्य के साथ छोटे समूहों में काम करते हैं। एक जैसी क्षमताओं वाले बच्चों को बग़ीचे में पौधों के बारे में जानकारी इकट्ठा करने या किसी पोस्टर के अलग-अलग हिस्सों को साथ मिलकर बनाने जैसी गतिविधियों में सहयोग करना होता है। ऐसे में वे अक्सर दोस्त बन जाते हैं और एक-दूसरे के प्रति सम्मान महसूस करने लगते हैं। इन सभी रणनीतियों ने यह दिखाया है कि इनके द्वारा अलग-अलग पहचान वाले बच्चों के बीच स्नेह और विश्वास बढ़ने लगता है।

दुनिया को वर्गीकृत करने के ढंग को बदलना

जब लोग प्रतिस्पर्धा करने की बजाय सहयोग करने के लिए एक-दूसरे के सम्पर्क में आते हैं, तो दुनिया को लेकर उनका वर्गीकरण बदलने लगता है। हमने अपने लिए आदतन कुछ श्रेणियाँ बना रखी हैं और हम आमतौर पर अपनी दुनिया में उन्हीं के आधार पर काम करते हैं। एक बच्चा सोचने लगता है, "यह लाल है और फड़फड़ा रही है, इसलिए यह गर्म होगी और मुझे जला देगी। मैं इससे दूर रहूँगा।" कुछ समय बाद, यह एक स्वीकृत तथ्य बन जाता है : जो कोई भी चीज़ आग की तरह दिखती है उससे, बिना कुछ और सोचे, दूर ही रहना चाहिए। हमारे वर्गीकरण हमारी भावनाओं और दृष्टिकोणों से जुड़े होते हैं। आग को देखकर भयाकुल सम्मोहन और डर की अनुभूति हो सकती है और बच्चा इससे दूर रहना चाहता है। लोगों के साथ भी ऐसा ही होता है — हम हर दिन समाचारों में चौकड़ी वाले स्कार्फ़ पहने दाढ़ी वाले आदमियों को बन्दूकें उठाए देखते हैं और सोचने लगते हैं कि जो कोई भी ऐसा दिखता है वह ख़तरनाक है और उस पर भरोसा नहीं करना चाहिए। इस तरह ऐसे दिखने वाले लोगों के प्रति नफ़रत और सन्देह पैदा हो जाता है और हम उनसे दूर ही रहना चाहते हैं।

एक और उदाहरण लेते हैं। यूके और यूएसए के श्वेत स्कूलों में बच्चों को अश्वेत और श्वेत लोगों की तस्वीरें दिखाई गईं और पूछा गया कि उन्हें कौन पसन्द है, वे किसे अच्छा मानते हैं और किसके साथ दोस्ती करना चाहते हैं। ज़्यादातर श्वेत बच्चों ने श्वेत लोगों की ही तस्वीरें उठाईं। हालाँकि, जब यही प्रयोग उन स्कूलों में किया गया जहाँ अलग-अलग रंगों वाली त्वचाओं के बच्चे पढ़ते थे, तो श्वेत बच्चों ने कई अलग-अलग, ग़ैर-श्वेत लोगों की तस्वीरें उठाईं जिन्हें वे पसन्द करते थे और जिनसे दोस्ती करना चाहते थे। यहाँ उन्होंने श्वेत लोगों के लिए कोई ख़ास पसन्द नहीं दिखाई।

इन बच्चों के मामले में, यह अलग-अलग जातियों के लोगों के साथ सम्पर्क ही था जिसने उनके प्रति इन बच्चों के विचारों को बदल दिया। लोगों द्वारा बनाए गए वर्गीकरण और उनके नज़रियों को बदलने के और भी कई तरीक़े हैं। अन्य समुदायों के साथ सम्पर्क तब मुश्किल हो सकता है जब आपकी कक्षा में उनके ज़्यादा सदस्य न हों। भारत की शिक्षा प्रणाली उत्तरोत्तर खण्डित होती जा रही है जहाँ सरकारी स्कूलों में केवल एक ख़ास क्षेत्र के ग़रीब बच्चे पढ़ते हैं जबकि बाक़ी ग़रीबों से लेकर बहुत अमीर बच्चे फ़ीस लेने वाले निजी स्कूलों में पढ़ते हैं। अलग-अलग इलाक़ों या गाँवों में अलग-अलग समुदायों का रहना भी एक आवासीय विभाजन है। फिर भी बहुत-सी चीज़ें हैं जो युवाओं द्वारा दुनिया को वर्गीकृत करने के ढंग को बदलने के लिए की जा सकती हैं।

कुछ पद्धतियाँ

एक बड़े पैमाने पर इस्तेमाल की जाने वाली रणनीति है — नियमित रूप से ऐसे वीडियो दिखाना और कहानियाँ पढ़ना, जो दूसरे समुदायों और जेंडरों के सदस्यों को सकारात्मक ढंग से सामने लाती हैं। मिसाल के तौर पर, इंग्लैंड में एक अध्ययन किया गया था जिसमें प्राथमिक स्कूल के बच्चे कहानी की ऐसी क़िताबें पढ़ते हैं जहाँ मुख्य पात्र एक शरणार्थी था। यह देखा गया कि इन बच्चों ने उन लोगों को पसन्द करने में साफ़तौर पर बढ़ोतरी दिखाई जो उनके देश में हाल ही में अप्रवासियों के रूप में आए थे। भारत में मेरे शोध सहयोगी ध्रुव देसाई कम फ़ीस लेने वाले एक निजी स्कूल में बच्चों की कहानियाँ पढ़ते हैं जहाँ कोई मुसलमान नहीं है और सिर्फ़ कुछ

दलित हैं। वे सोच-समझकर ऐसी कहानी की क़िताबें चुनते हैं जिनमें मुख्य पात्र एक लड़की होती है जो रूढ़िवादिता को तोड़ने की कोशिश कर रही है या जो उस दर्द को बयाँ करती हैं जो जातिवाद बच्चों और वयस्कों के लिए पैदा कर सकता है।

दुनिया को लेकर बच्चों के संज्ञानात्मक और भावात्मक वर्गीकरण को बदलने के लिए किस तरीक़े का उपयोग करना है, यह अन्य चीज़ों के अलावा उनकी उम्र पर भी निर्भर करता है। कई शोधकर्ताओं का कहना है कि बच्चों में किन्हीं समुदायों और जेंडरों को लेकर पाँच साल की छोटी उम्र से ही पूर्वाग्रह विकसित हो सकते हैं! उस उम्र में, वे बहुत ज़्यादा सामान्यीकरण करते हैं और उनके लिए यह देखना मुश्किल होता है कि हर कोई एक जैसा नहीं है। उन्हें यह समझने में मुश्किल होती है कि जिन समुदायों के प्रति उन्होंने नकारात्मक धारणाएँ बना रखी हैं, उनमें अच्छे लोग भी हो सकते हैं। 8-10 साल से ज़्यादा उम्र के बच्चों को यह बात समझने में आसानी होती है।

कहानियों की प्रकृति से भी फ़र्क़ पड़ता है। सिर्फ़ कई तरह की पहचानों वाली कहानियों के होने से बहुत ज़्यादा अन्तर नहीं आ सकता। उदाहरण के लिए, अगर कुछ उत्तर भारतीय बच्चे दक्षिण भारतीयों को नापसन्द करते हैं और उनका मज़ाक उड़ाते हैं, तो ज़रूरी नहीं कि सुब्रमण्यम नाम के क़िरदार को लेकर बनाई गई कोई मज़ेदार और साहस से भरी कहानी उनके पूर्वाग्रह को बदलने के लिए काफ़ी हो। वे इस सुब्रमण्यम को पसन्द कर सकते हैं लेकिन फिर भी बाक़ी दक्षिण भारतीयों को लेकर अपनी धारणाएँ और नज़रिए वैसे के वैसे ही बनाए रखते हैं। जब सुब्रमण्यम की दक्षिण भारतीय पहचान पर बार-बार ज़ोर दिया जाता है और उसका चित्रण इस प्रकार किया जाता कि उसके भीतर दक्षिण भारतीयों के अच्छे गुण हैं तो इससे ज़्यादा फ़र्क़ पड़ता दिखाई देता है। बहुत छोटे बच्चे उनके पूर्वाग्रह के ख़िलाफ़ जाने वाले इस उदाहरण को अनदेखा कर सकते हैं और अपनी धारणाओं पर अडिग रहते हैं। लेकिन बड़े बच्चों के साथ इस चीज़ की सम्भावना ज़्यादा होती है कि वे कहानी का मज़ा लेने के बाद चीज़ों को अलग ढंग से देखने की कोशिश करेंगे। विरोधाभासी रूप से, पहचान पर ज़ोर देने से लोगों द्वारा किए गए वर्गीकरणों को बदलने में मदद मिलती है। यह उन भावनाओं और नज़रियों को बदलने में भी मदद करता है जो वे कई अलग-अलग सामाजिक समूहों के प्रति रखते हैं।

पूर्वाग्रहों को दूर करने के लिए विषयों का इस्तेमाल

बन्धुत्व के निर्माण के कई सिद्धान्तों को साधारण स्कूली कक्षाओं में आसानी से शामिल किया जा सकता है। भाषा की कक्षाओं में ऐसी कहानियों और नाटकों को चुनना सम्भव है जो हमारी रूढ़िबद्ध धारणाओं को बदल दें और उन्हें तोड़ दें। कक्षा में उन पर की जाने वाली चर्चाएँ बच्चों की भावनाओं और नज़रियों को बदलने में मदद करती हैं। शिक्षक सहयोगपूर्ण शिक्षा को अपनी रोज़मर्रा की गतिविधियों में भी शामिल कर सकते हैं। ऐसा देखा गया है कि इससे न केवल बन्धुत्व को बढ़ावा मिलता है बल्कि विद्यार्थियों के सीखने के स्तर और उस विषय के आनन्द को भी बढ़ाता है जिसका वे अध्ययन कर रहे होते हैं। खेलों को ऐसे तरीक़ों से खेला जा सकता है जो सामाजिक समूहों के बीच प्रतिस्पर्धा की बजाय सहयोग को बढ़ावा दें।

कई शिक्षाविदों का मानना है कि हमारा स्कूली पाठ्यक्रम भी उस नफ़रत और डर को रोकने के लिए ज़्यादा पैने ढंग से ध्यान दे सकता है जिसे हम आज दुनिया में देख रहे हैं। उदाहरण के लिए, अलग-अलग सामाजिक समूहों को दर्शाने के तरीक़े पर ज़्यादा ध्यान दिया जाए तो इससे मदद मिल सकती है। मनुष्यों का अकादमिक अध्ययन इसमें एक अहम भूमिका निभाता है और हम दुनिया को कैसे वर्गीकृत करते हैं, इसे बदलने में बहुत मदद कर सकता है। सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में काफ़ी मेहनत की गई है जिसने हमें यह समझने में मदद की है कि पूर्वाग्रह ग़लत हैं और सच्चाई से दूर हैं। मिसाल के तौर पर, इस इतिहास को पढ़ाना कि जातियों का उदय कैसे हुआ और किस तरह वे अपने वर्तमान स्वरूप में आईं, लोगों के कई पूर्वाग्रहों को हिला सकता है। इससे पता चलेगा कि असल में लोग अपने भाग्य के उत्थान और पतन के अनुसार अलग-अलग वर्णों के बीच आते-जाते रहे हैं। जातियाँ बन्द डिब्बों की तरह नहीं हैं, जैसा कि अपनी जाति के वर्चस्व को बनाए रखने की मंशा रखने वाले लोग चाहते हैं कि हम विश्वास करें। नफ़रत फैलाने वाले नेता जितना सोचते हैं, हममें उससे कहीं ज़्यादा चीज़ें समान हैं। जीवविज्ञान आसानी से दिखा सकता है कि वास्तव में सभी जातियों, बल्कि दुनिया के सभी लोगों के बीच आनुवंशिक सामग्री में दरअसल बहुत हद तक समानता है। अकादमिक शोध हमें यह समझने में मदद करता है कि पुरुषों और महिलाओं के बीच फ़र्क़ की बुनियाद जीवविज्ञान से ज़्यादा सामाजिक परिस्थितियों और संस्कृति में निहित है। गम्भीर अकादमिक अध्ययन से यह भी पता चलता है कि धर्म के नाम पर की जाने वाली हिंसक वारदातें आमतौर पर सत्ता या बदला लेने की इच्छा का नतीजा होती हैं और केवल धार्मिक विश्वासों के चलते नहीं की जातीं। स्कूली पाठ्यक्रमों में इन मुद्दों पर ज़्यादा ज़ोर देकर उन वर्गीकरणों को रोकने में मदद मिल सकती है जो लोगों को बाँटते हैं और उन्हें अलग रखते हैं।

अपने देश और दुनिया में बन्धुत्व को कैसे बढ़ावा दिया जाए, इसके बारे में हम बहुत कुछ सीख सकते हैं। जब मैं देखता हूँ कि स्कूलों और विश्वविद्यालयों में क्या हो रहा है जहाँ विविध

और एक-दूसरे से जुदा पृष्ठभूमियों के लोग इकट्ठा होते हैं और दोस्त बन जाते हैं, तो मुझे बहुत उम्मीद मिलती है। शैक्षिक संस्थान और युवा संगठन सामाजिक समूहों के बीच विश्वास, मित्रता और समानता को बनाने में बड़ा योगदान दे सकते हैं। इसके लिए वे अपने ख़ुद के अनुभवों और मानवशास्त्र, मनोविज्ञान, सामाजिक मनोविज्ञान आदि विषयों में हुए शोध से काफ़ी कुछ सीख सकते हैं।

घृणा, तिरस्कार और डर अपरिहार्य नहीं हैं। हम बेशक उन पर क़ाबू पाने के तरीक़े सीख सकते हैं। ज़रूरी है कि यह काम किंडरगार्टन की कक्षाओं से ही शुरू कर दिया जाए।

अमन मदान अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, भोपाल में पढ़ाते हैं और संवाद, बन्धुत्व और न्याय के लिए बने एक हित समूह का संचालन करते हैं। उनसे *amman.madan@apu.edu.in* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : अमेय कान्त **पुनरीक्षण :** भरत त्रिपाठी **कॉपी एडिटर :** अनुज उपाध्याय

शिक्षक की ख़ुशहाली पर पुनर्विचार | तनाव और थकान से दूर

जवेरिया सलीम

शिक्षकों की ख़ुशहाली पर होने वाले वर्तमान विमर्श अक्सर शिक्षकों में तनाव और थकान के कारणों और उनके इलाज सम्बन्धी सलाह के इर्द-गिर्द घूमते हैं। यह लेख, शिक्षकों की ख़ुशहाली के लिए ज़रूरी स्थितियों की गहराई में जाकर इसके महत्त्व को समझने की कोशिश करता है। साथ ही, यह जानने की भी कोशिश की गई है कि किस तरह सम्बद्ध संस्थाएँ, भावनात्मक बुद्धिमत्ता का पोषण करने वाली उस ख़ुशहाल स्कूली संस्कृति को बढ़ावा दे सकती हैं और उसे इस तरह बनाए रख सकती हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमता साकार करने का पूरा-पूरा अवसर मिले। इसके बाद यह लेख इस बात की पड़ताल करता है कि कैसे शिक्षक व स्कूल लीडर अपनी और साथ ही अपने शिक्षार्थियों की ख़ुशहाली को बढ़ा सकते हैं।

शिक्षक की ख़ुशहाली का महत्त्व

आधुनिक जीवन में तनाव के बढ़ते स्तर, संयुक्त परिवार व आस-पड़ोसियों के सहयोग से वंचित छोटे परिवारों और ख़ासकर, कोविड-19 के बाद भावनात्मक मज़बूती में आई गिरावट के मद्देनज़र शिक्षकों की ख़ुशहाली अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो चली है। ये कारक न केवल शिक्षकों की अपनी ख़ुशहाली को प्रभावित करते हैं, बल्कि उन पर उन शिक्षार्थियों की अतिरिक्त ज़िम्मेदारी भी डालते हैं, जो इन्हीं चुनौतियों से गुज़र रहे होते हैं। वह तो जब कोई शिक्षक ख़ुद ख़ुशहाली अनुभव करती है, तभी वह विद्यार्थियों की विविध सामाजिक भावनात्मक व शैक्षणिक आवश्यकताओं को समझ पाएगी और उन्हें पूरा करने की चुनौतियों से निपटने में सक्षम होगी। शिक्षक की ख़ुशहाली को सुनिश्चित करने की ज़रूरत को सबसे उपयुक्त रूप से टिक नाट हान ने *टीचिंग टू ट्रांसग्रेस* (बेल हुक्स, 1994) में व्यक्त की है — "एक उपचारक, चिकित्सक, शिक्षक या एक मददगार पेशेवर का अभ्यास पहले स्वयं पर होना चाहिए, क्योंकि अगर मददगार ही नाख़ुश है, तो वह बहुत लोगों की सहायता नहीं कर सकता।"

विद्यार्थी की ख़ुशहाली के लिहाज़ से ज़रूरी एक सुरक्षित व पोषक वातावरण के निर्माण में शिक्षकों की सबसे अहम भूमिका होती है। विद्यार्थियों के शिक्षार्जन तथा सकारात्मक एवं समृद्ध स्कूली संस्कृति पर प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से शिक्षक की ख़ुशहाली के सकारात्मक प्रभाव पड़ने के पर्याप्त शोध प्रमाण मौजूद हैं। ख़ुशहाली महसूस करने वाले शिक्षक अपने विद्यार्थियों से एक आत्मीय रिश्ता बना पाते हैं, कक्षा में होने वाले संवाद व आचरण को बेहतर ढंग से नियोजित कर पाते हैं, सीखने की दृष्टि से कक्षा में एक निडर व सकारात्मक माहौल बनाते हैं और अलग-अलग विद्यार्थियों की ज़रूरतों के प्रति संवेदनशील होते हैं व उनकी प्रगति के लिए उन्हें ज़रूरी मदद दे पाते हैं। वे स्कूल द्वारा उन्हें मिल रही सामाजिक पूँजी का लाभ लेकर पेशेवर लोगों के नेटवर्क बनाने में भी सफल होते हैं जिसकी मदद से वे अपनी व्यक्तिगत व पेशेवर लक्ष्य-प्राप्ति कर पाते हैं।

प्रशासनिक और वित्तीय दृष्टिकोण से भी शिक्षक की ख़ुशहाली को सुनिश्चित करना महत्त्वपूर्ण होता है क्योंकि इससे उत्पादकता बेहतर होती है, अधिक कार्य-सन्तुष्टि मिलती है और नौकरी छोड़ने की दर कम हो जाती है। शिक्षक ख़ुशहाली का ध्यान रखने से उनके हितों के प्रतिकूल मसलों की एक समझ बनती है और साथ ही ऐसी कार्य-परिस्थितियाँ निर्मित होती हैं जिनमें अध्यापक अपने विद्यार्थियों और सह-शिक्षकों के साथ सकारात्मक रूप से जुड़ पाते हैं और अपने कार्य में सफलता पाते हैं जिसे वे कार्य-सन्तुष्टि के बतौर अनुभव करते हैं।

शिक्षक ख़ुशहाली के आयाम

ख़ुशहाली की स्थिति यानी जीवन से ऐसी सन्तुष्टि जिसमें ख़ुशी हो, सन्तोष हो और मक़सद हो। अमूमन इसका सम्बन्ध, जीवन के तनावों से निपटने, सम्बन्ध बनाने और उन्हें बनाए रखने, स्वस्थ व दुरस्त रहने और अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के उपक्रम में उद्देश्यपूर्वक उत्पादक बने रहने की हमारी क्षमता से होता है।

लेकिन, कार्यस्थलीय ख़ुशहाली का एक सामाजिक-पारिस्थितिकी आयाम भी होता है। एक ओर जहाँ, शिक्षकों की ख़ुशहाली काफ़ी हद तक भावनाओं से दो-चार होने, सम्बन्धों को सम्भालने और व्यक्तिगत व पेशेवर लक्ष्यों को प्राप्त करने में उनकी अपनी योग्यता पर निर्भर करती है, वहीं यह उनके कामकाजी जीवन के तमाम सम्बन्धित कारकों से उल्लेखनीय रूप से प्रभावित होती है - भौतिक वातावरण की निरापदता

शारीरिक स्वस्थता और सचेतनता | काम में कुशल और उत्पादक होना | अच्छे सम्बन्धों का आनन्द लेना, सुरक्षित महसूस करना, समुदाय से जुड़ाव | व्यक्तिगत व पेशेवर लक्ष्यों की प्राप्ति | कार्य-जीवन संतुलन बनाना

चित्र-1 : शिक्षक की ख़ुशहाली के व्यक्तिगत, सामाजिक व पारिस्थितिकी आयाम।

व सुरक्षा से लेकर उस भावनात्मक सुरक्षा तक, जो महत्त्वपूर्ण समझे जाने, सराहना पाने और सुने जाने से मिलती है; और सहकर्मियों, शिक्षार्थियों तथा वृहत्तर स्कूल समुदाय के साथ सौहार्दपूर्ण व भरोसेमन्द सम्बन्धों से मिलती है। उनके काम की गुणवत्ता, उनके शिक्षण की प्रभावशीलता तथा सीखने के माहौल और विद्यार्थियों की उपलब्धियों के सन्दर्भ में उनके द्वारा किए जाने वाले 'मूल्य संवर्धन' को लेकर शिक्षकों की धारणा का भी उनकी कार्य सन्तुष्टि व ख़ुशहाली की भावना में सुस्पष्ट योगदान होता है।

ख़ुशहाली की समर्थकारी सामाजिक-भावनात्मक क्षमताएँ

कंसोर्टियम फॉर सोशिओ इमोशनल लर्निंग (CASEL, 2013) शिक्षक ख़ुशहाली हेतु पाँच ऐसी सामाजिक-भावनात्मक क्षमताओं का सुझाव देता है जो विद्यार्थियों के शिक्षा परिणामों को भी प्रभावित करती हैं।

- आत्म-जागरूकता : आत्म-जागरूक होना यानी अपनी भावनाओं, लक्ष्यों, मूल्यों, शक्तियों व सीमाओं को समझना; इससे सकारात्मक मानस विकसित होने में मदद मिलती है।
- आत्म-प्रबन्धन : अपने विचारों, भावनाओं व व्यवहार को अनुशासित करने की क्षमता; इससे व्यक्ति को अपने तनाव का प्रबन्धन करने, यथार्थवादी लक्ष्य निर्धारित करने और ज़रूरत पड़ने पर इनके अनुसार ख़ुद को ढाल पाने में मदद मिलती है।
- सामाजिक जागरूकता : सामाजिक रूप से जागरूक होना यानी सामाजिक मानदण्डों व अपेक्षाओं को समझना। इसकी मदद से हम दूसरों की सामाजिक भावनात्मक आवश्यकताओं को समझ पाते हैं और उनके प्रति सहानुभूतिपूर्ण व सहृदय बनते हैं। तुलनात्मक रूप से शिक्षक अपने विद्यार्थियों की विविध आवश्यकताओं को समझने, संसाधनों को चिह्नित करने और व्यापक स्कूल समुदाय से सहयोग प्राप्त करने के लिहाज़ से बेहतर स्थिति में होते हैं।
- सम्बन्ध निर्माण : विद्यार्थियों व सहकर्मियों के साथ मज़बूत और भरोसेमन्द सम्बन्ध बनाने में सक्षम होना एक स्नेहशील और सहयोगपूर्ण कार्य संस्कृति बनाने का गुर है। सक्रिय रूप से सुनने, स्पष्ट संवाद करने और जुड़ाव महसूस करने की क्षमता व्यक्ति को समुदाय से जुड़ने में

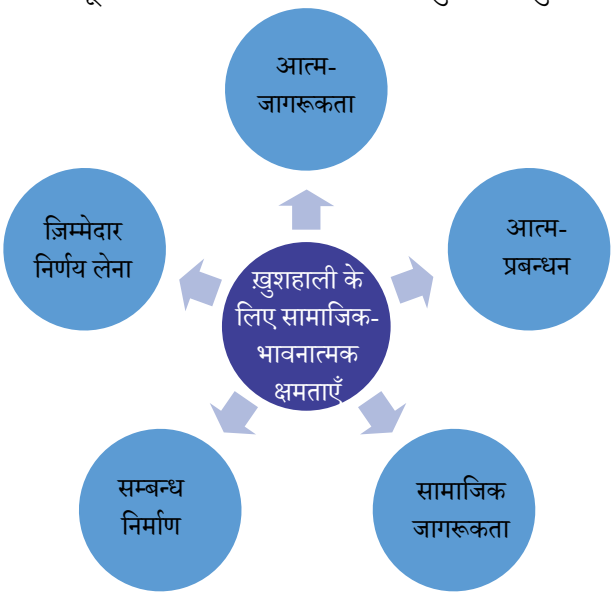

चित्र-2 : ख़ुशहाली को सम्भव बनाने वाली सामाजिक-भावनात्मक क्षमताएँ (सीएएसईएल, 2013)।

सक्षम बनाती है। यह आपसी सहयोग और मतभेदों के सौहार्दपूर्ण समाधान को सम्भव बनाती है, जिसके चलते हर कोई सुरक्षित व भयमुक्त महसूस करता है।

- ज़िम्मेदार निर्णय लेना : ख़ुद को जानने वाला व्यक्ति ज़रूरत के वक़्त आत्म-विश्वास से भरे निर्णय लेता है। विशेष रूप से, शिक्षकों को, अपने दिनभर के कामकाज के दौरान अपने तमाम कार्य-क्षेत्रों में सूझबूझ भरे अनेक निर्णय

लेने पड़ते हैं जैसे कि विद्यार्थियों के बैठने और उनके समूह बनाने से लेकर, उपयुक्त शिक्षण-अधिगम व मूल्यांकन युक्तियों का चयन करने और विद्यार्थियों को बेहतर बनने में सहायक अत्यन्त विशिष्ट फीडबैक व सहयोग प्रदान करना। इनमें से कुछ निर्णयों के लिए नैतिक आधारों पर सावधानीपूर्वक विचार करने की आवश्यकता होती है ताकि अपनी देखभाल में रहने वालों की ख़ुशहाली के प्रति न्यायसंगत, निष्पक्ष व सचेत रहते हुए विवेकशील चुनाव किए जा सकें।

हालाँकि, पर्याप्त सामाजिक-भावनात्मक क्षमताएँ रखने वाले शिक्षकों को भी अपने नियंत्रण से परे और बाहरी वातावरण से उत्पन्न होने वाले कारणों से तनाव और थकान का ख़तरा हो सकता है। बाहरी कारणों के चलते अपने लक्ष्यों को पूरा करने में असमर्थ अति उत्साही व स्व-संचालित शिक्षकों को हताशा व तनाव होने का अधिक ख़तरा होता है। मसलन, व्यवहार सम्बन्धी मुद्दों को हल करने के लिए सहकर्मियों व स्कूल प्रमुखों के साथ सहयोग के पारिस्थितिकी तंत्र के साथ-साथ सकारात्मक अनुशासनात्मक उपायों व सौहार्दपूर्ण विवाद-समाधान की प्रक्रियाओं की साझा समझ ज़रूरी होती है। इनके अभाव में, शिक्षकों को भावनात्मक थकावट और हताशा हो सकती है। तिस पर उन्हें चिन्तित करने वाली एक और चीज़ हो सकती है - पाठ्यक्रम पूरा करने और अन्य प्रशासनिक कार्यों हेतु ऊपर से आने वाले निर्देश जो उनका समय तो खाते ही हैं, साथ ही, उनके पेशेवर लक्ष्यों की पूर्ति में बाधक भी बनते हैं। यदि स्कूल की कार्य संस्कृति, स्कूल के भीतर या बाहर सीखने वाले ऐसे समुदायों के निर्माण को प्रोत्साहित नहीं करती है जो उनका सहयोग कर सकती हों तो समस्या और विकट हो जाती है।

शिक्षक की ख़ुशहाली का पोषण

ख़ुशहाली का पोषण, शिक्षक और स्कूल प्रमुख, दोनों का सामूहिक उत्तरदायित्व है। एक ओर जहाँ, शिक्षकों को स्वयं ख़ुशहाली की ओर ले जाने वाली अपनी क्षमताओं को विकसित करने की ज़रूरत होती है, वहीं कार्यस्थल पर नेतृत्व करने वालों को एक ऐसा सकारात्मक स्कूल वातावरण बनाने के लिए प्रतिबद्ध होना चाहिए जो शिक्षकों को स्वायत्तता, पेशेवर विकास के अवसर और विद्यार्थियों व सहकर्मियों के साथ भरोसेमन्द सम्बन्ध विकसित करने की सम्भावनाएँ देता है। ऐसी संस्कृति विकेन्द्रित नेतृत्व, पारदर्शी व स्पष्ट दो-तरफ़ा संचार और सामूहिक निर्णय प्रक्रिया में परिलक्षित होती है।

शिक्षक स्वयं के लिए क्या कर सकते हैं :

- ख़ुद की देखभाल के लिए एक 'मेरा-समय व स्थान' निर्धारित करें : शिक्षकों को इसे हर दिन लगातार करते रहने की आवश्यकता है। कुछ दिनचर्याएँ जो शिक्षकों को 'प्रसन्नचित्त' रखती हैं, जैसे फिटनेस पर समय बिताना, अपना कोई शौक़ पूरा करना, ध्यान में रमना या फिर किसी अपने से बात करना।
- अपने पेशेवर विकास के लिए कुछ समय निर्धारित करें : जो शिक्षक शिक्षा में एकदम नवीनतम गतिविधियों के बारे में पढ़ते हैं या अपने सहकर्मियों से इनकी चर्चा करते हैं, अपने अभ्यास पर मनन करते हैं और अपने अध्यापन में नए विचार अपनाते हैं, उनके आत्मविश्वास व आत्म-सम्मान में बढ़ोतरी पाई जाती है। वे अपने पेशेवर व्यवहार को प्रभावी और सफल मानते हैं और उपलब्धि व कार्य-सन्तुष्टि का अधिक आनन्द ले पाते हैं।
- विद्यार्थियों, सहकर्मियों, अन्य कर्मचारियों, बाक़ी स्टाफ

चित्र-3 : शिक्षक की ख़ुशहाली का पोषण करना।

तथा स्कूल के बाहर के पेशेवरों के साथ नेटवर्क व सम्बन्ध बनाएँ : शिक्षकों से लगातार ऐसी रिपोर्टें मिलती हैं कि विद्यार्थियों के साथ अच्छे सम्बन्ध होने से कक्षा के व्यवहार और शिक्षण, दोनों को सम्भालने का तनाव दूर हो जाता है। इसी तरह, सहकर्मियों के साथ सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध न केवल सहयोग के माध्यम से उनके काम को आसान बनाते हैं बल्कि उसे समृद्ध व अधिक आनन्दमय भी बनाते हैं।

स्कूल प्रमुख क्या कर सकते हैं :

- सबके साथ सम्मानपूर्वक व्यवहार करें
- प्रत्येक शिक्षक की बात सुनें और उन्हें निर्णय प्रक्रिया में शामिल करें
- स्वायत्तता प्रदान करें
- शिक्षकों की समस्याओं पर चर्चा करने और समाधान खोजने के लिए एक विश्वसनीय जगह बनाएँ ताकि वे मिल-जुलकर सीखें और आगे बढ़ें
- शिक्षणेतर प्रतिभाओं के प्रदर्शन के अवसर दें। ये आयोजन, शिक्षकों के लिए ख़ुद को महत्त्वपूर्ण महसूस करने और प्रशंसित होने व एक-दूसरे के साथ जुड़ने के तमाम अवसर प्रदान करते हैं, जिससे समुदाय से जुड़े होने की भावना पैदा होती है।

एक 'हैप्पी स्कूल' के तीन अभ्यास

इक़बालिया इंटरनैशनल स्कूल (IIS), हैदराबाद को 2017 में अद्वैत फ़ाउंडेशन द्वारा अपनी परिवर्तनकारी प्रथाओं के लिए पहचाना गया। निम्नलिखित अभ्यास एक ऐसा पारिस्थितिकी तंत्र बनाने में सहायक थे जो शिक्षकों व शिक्षार्थियों की ख़ुशहाली का पोषण और एक ख़ुशहाल स्कूल संस्कृति का निर्माण करते थे।

1. शिक्षकों का सर्कल टाइम

प्रत्येक शनिवार, जब विद्यार्थी सुबह के घण्टे का नेतृत्व करते हैं, शिक्षक मण्डली, अपने सर्कल टाइम के लिए हॉल में इकट्ठा होती है और उनमें से प्रत्येक एक अनुभव साझा करता है जिसने उन्हें सकारात्मक रूप से प्रभावित किया। प्रारम्भ में, जब यह अभ्यास शुरू किया गया था, शिक्षकों को बड़ी कठिनाई हुई थी। स्पष्ट रूप से, हमारा मन अप्रिय अनुभवों पर अधिक ध्यान देता है। पर समय के साथ, बातचीत स्वतःस्फूर्त रूप से प्रवाहित होने लगी और शिक्षकों ने बताया कि कैसे उन्होंने धीरे-धीरे अपने आस-पास के सकारात्मक अनुभवों को ध्यान में लेना, इनके बारे में ज़्यादा-से-ज़्यादा सोचना और इनका स्वाद लेना सीखा और इससे उन्हें अपने और साथ ही अपने आस-पास के लोगों के बारे में 'अच्छा' महसूस होने लगा। इस चलन ने एक-दूसरे को बेहतर जानने में शिक्षकों की मदद की, उन्हें परस्पर-सम्बन्ध बनाने के अवसर दिए और उनमें अपनेपन व भाईचारे की भावना को बढ़ावा दिया।

2.3-एस बैठक [1]

सप्ताह में एक बार, सभी विषय शिक्षक 90 मिनट (दो पीरियड) के लिए मिलते थे जो उनके कैलेंडर में नियोजित था। एजेंडा होता था, किसी ऐसी कक्षा कार्यनीति पर बात करना जो उनके लिए अच्छी तरह से काम करती थी या फिर किसी ऐसे मुद्दे पर बात करना जिससे उन्हें जूझना पड़ता था और जिसके लिए पूरी टीम अपने अपने सम्भावित समाधान पेश करती थी। इसके चलते शिक्षकों को एक सुरक्षित स्थान मिला जहाँ वे अपनी समस्याओं पर बेझिझक चर्चा कर सकते थे, मदद माँग सकते थे और अपनी रोज़मर्रा की समस्याओं का समाधान ढूँढ़ सकते थे। इसने कई शिक्षकों को पेशेवर विकास के लिए एक आवश्यक मंच प्रदान किया जिस पर वे अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन कर सके। इससे न केवल पूरे स्कूल में शिक्षण प्रभावशीलता बढ़ाने में मदद मिली, बल्कि इससे स्कूल में सामूहिक कार्यान्वयन का एक चलन-सा बन गया और शिक्षक इस स्थान का उपयोग करते हुए पाठों की योजना बनाने व संसाधनों को साझा करने के लिहाज़ से एकजुट हो जाते और अपनी-अपनी कक्षा प्रक्रियाओं के अवलोकन के लिए वे एक-दूसरे को आमंत्रित करते और इस तरह सार्थक प्रतिक्रियाएँ देना सीखते जाते। यह व्यवस्था स्कूल में चल रहे पेशेवर विकास के लिए एक शक्तिशाली उपकरण बनी और इसने सीखने की एक ऐसी संस्कृति बनाई जिसने विद्यार्थियों को भी उतना ही लाभ पहुँचाया जितना शिक्षकों को।

3. टीचर-लीडर

अलग-अलग कौशलों से लैस होने के चलते, समूचा शिक्षक समुदाय विविधता पूर्ण होता है। इनमें से कुछ कौशल, अवसरों की कमी के चलते अपनी पूरी सम्भावनाओं पर नहीं पहुँच पाते। 'टीचर-लीडर' विधि ने हर एक के लिए अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करने के दरवाज़े खोल दिए और सहयोग की संस्कृति के साथ, कम आत्मविश्वास वाले लोगों ने भी अन्ततः अपनी मनपसन्द ज़िम्मेदारियाँ उठाईं और अच्छा प्रदर्शन किया। साल के लिए कार्यक्रम कैलेंडर तैयार करते समय, शिक्षक उन कार्यक्रमों को चुनने के लिए स्वतंत्र थे जिनका वे नेतृत्व कर सकते थे और साथ ही अपनी सहायक टीम भी चुन सकते थे। उपलब्ध संसाधनों के लिहाज़ से और परिणाम सुनिश्चित करने के हिसाब से उनके पास अपने मनचाहे कार्यक्रम की योजना बनाने और संचालन करने की पूरी स्वायत्तता थी। पहले साल के अन्त में, अलग-अलग शिक्षकों का कहना था — "मुझे

नहीं पता था कि मुझमें यह (गुण) है"; "इससे मुझे अपने पसन्दीदा कार्यक्रम की योजना बनाने और उसे क्रियान्वित करने के लिए ख़ूब सारा समय मिला। मैं हमेशा इसे इसी तरह से करना चाहता था, लेकिन इतने सारे कार्यक्रमों के चलते कभी समय नहीं मिल पाया था"; "मैंने पहले कभी कार्यक्रम संचालन नहीं किया था; अच्छा लगा जब मेरे विद्यार्थियों और अभिभावकों ने मेरे उच्चारण को लेकर मेरी तारीफ़ की। मुझे लगता है कि हम ख़ुद को बहुत ज़्यादा सीमित कर लेते हैं और नए काम करने में झिझकते हैं। अगर मुझे इसे अकेले करना होता तो मैं ऐसा न कर पाती। सपोर्ट टीम होने से वास्तव में मदद मिली।"

दरअसल, स्कूल संस्कृति को बदलने और शिक्षकों व विद्यार्थियों की ख़ुशहाली सुनिश्चित करने वाली इन सभी प्रथाओं के केन्द्र में, एक सहृदय और प्रेमिल नेतृत्वकर्ता होता है, जिसने स्वेच्छा से अपनी विशेषज्ञता व अधिकार, दोनों साझा किए होते हैं ताकि उसकी टीम अपना सर्वश्रेष्ठ दे सके।

'ख़ुशहाल संस्कृति' को बनाए रखना

ख़ुशहाली कोई ऐसी 'अवस्था' नहीं है जिसे एक बार हासिल कर लेने के बाद वह सदा बनी रहेगी; यह व्यक्तिगत या पेशेवर जीवन के प्रसंगों के कारण सामाजिक-भावनात्मक आत्म के आहत होने से बाधित हो सकती है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि शिक्षक व्यक्तिगत और पेशेवर प्रदर्शन से ख़ुश और सन्तुष्ट बने रहें, यह आवश्यक है कि उनकी ख़ुशहाली को समय-समय पर मापा जाए और तदनुसार समूची व्यवस्था में ज़रूरी फेरबदल किया जाए।

ऐसी अनेक युक्तियाँ और विधियाँ हैं जो स्कूल में शिक्षक ख़ुशहाली के वैध व विश्वसनीय पैमाने प्रस्तुत करती हैं; ज़रूरत के हिसाब से प्रश्नावलियों, सर्वेक्षणों और समूह चर्चाओं से लेकर आमने-सामने के व्यक्तिगत साक्षात्कारों तक। डेटा संग्रह का तरीक़ा चाहे जो भी हो, ध्यान उस जानकारी पर होना चाहिए जो वास्तव में ख़ुशहाली की अवलोकन योग्य अवधारणाओं का प्रतिनिधित्व करती हो। तीन महत्त्वपूर्ण और आपस में जुड़े पहलुओं को आमतौर पर कार्य-सम्बन्धित ख़ुशहाली के वैध पैमानों के बतौर माना जाता है :

- पेशेवर प्रभावशीलता : गुणवत्तापूर्ण शिक्षण में सफलता, पेशेवर दायित्वों की पूर्ति, पेशेवर विकास
- काम से सम्बन्धित तनाव : अध्यापन भार, प्रशासनिक व अतिरिक्त ज़िम्मेदारियाँ, आवागमन के मुद्दे, शिक्षार्थियों या सहकर्मियों के साथ तनावपूर्ण सम्बन्ध
- विद्यार्थियों व सहकर्मियों के साथ मज़बूत सम्बन्धों के कारण अपनेपन और जुड़ाव की भावना

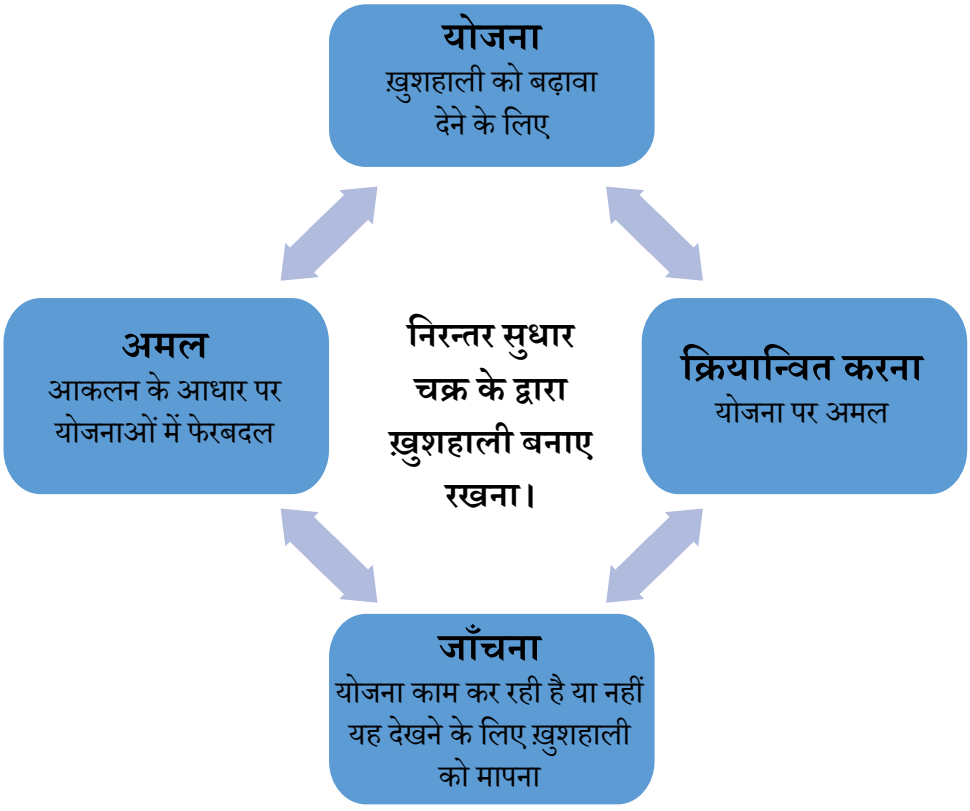

चित्र-4 : ख़ुशहाल कार्य-संस्कृति को बनाए रखना।

इन तीन मापदण्डों के इर्द-गिर्द शिक्षकों की राय और उनका नज़रिया जानकर स्कूल नेतृत्व को उनकी ख़ुशहाली की स्थिति का एक विश्वसनीय पैमाना बनाने में मदद मिलती है। हालाँकि, डेटा संग्रह के लिहाज़ से एक सुरक्षित वातावरण और स्पष्ट संचार प्रणाली सुनिश्चित करना इसकी एक अनिवार्य शर्त है ताकि प्रतिक्रियाएँ निर्भीक व स्पष्ट हों। तभी सार्थक निष्कर्ष निकालने व निर्णय प्रक्रिया के आधार के बतौर डेटा का इस्तेमाल सुरक्षित रूप से किया जा सकता है। प्रबन्धन विज्ञान से ली गई एक विशेष रूप से उपयोगी युक्ति, पुनरावर्ती पीडीसीए (प्लान-डू-चेक-एक्ट) चक्र है जो निरन्तर सुधार के द्वारा संस्थानों को गुणवत्ता अपनाने में मदद करता है।

इससे स्कूल के नेतृत्वकर्ता साक्ष्य-आधारित कार्य योजना के लिए विश्वसनीय डेटा एकत्र करने में, अपने कार्यों के प्रभाव की लगातार जाँच करने में और इच्छित परिणाम नहीं मिलने पर योजनाओं में युक्तिसंगत फेरबदल करने में सक्षम होते हैं। इसकी मदद से वे उन कारकों की पहचान भी कर पाते हैं जो ख़ुशहाली को ख़तरे में डाल सकते हैं और ऐसा होने पर वे ख़ुशी भरी ऐसी कार्य संस्कृति को मज़बूत करने के उचित निवारक उपाय भी कर सकते हैं जो सबकी ख़ुशहाली को बढ़ावा देती है।

सन्दर्भ :

1.एक त्रिकोणीय पाठ्यक्रम संरचना जिसमें विषयवस्तु, ख़ुद से सीखना और सामाजिक रूप से सीखना शामिल हैं।

References

Acton, R., & Glasgow, P. (2015). Teacher Wellbeing in Neoliberal Contexts: A Review of the Literature. *Australian Journal of Teacher Education*, 40(8). http://dx.doi.org/10.14221/ajte.2015v40n8.6

Collie, R. J., Martin, A. J., & Frydenberg, E. (2017). Social and Emotional Learning: A Brief Overview and Issues Relevant to Australia and the Asia-Pacific. *Social and Emotional Learning in Australia and the Asia-Pacific*, 1–13. https://doi.org/10.1007/978-981-10-3394-0_1

Collie, R. J., Shapka, J. D., Perry, N. E., & Martin, A. J. (2015). Teacher well-being: Exploring its components and a practice-oriented scale. Journal of Psychoeducational Assessment, 33(8), 744–756. Retrieved from https://journals.sagepub.com/doi/full/10.1177/0734282915587990.

How to grow teacher wellbeing in your schools - Google Search. (n.d.). *In how to grow teacher wellbeing in your schools - Google Search*. https://www.google.com/search?q=how+to+grow+teacher+wellbeing+in+your+schools&rlz=1C1SQJL_enIN987IN987&oq=Grow+teacher+wellbeing+&aqs=chrome.1.69i57j0i22i30i625j0i390l5.7622j1j7&sourceid=chrome&ie=UTF-8

Jennings, P. A. (2011). Promoting teachers' social and emotional competencies to support performance and reduce burnout. In A. Cohen & A. Honigsfeld (Eds.), Breaking the mold of pre-service and in-service teacher education: Innovative and successful practices for the 21st century (pp. 133–143). Lanham, MD: Rowman & Littlefield.

Retallick, John & Butt, Richard. (2004). Professional well-being and learning: A study of teacher-peer workplace relationships. Journal of Educational Enquiry. 5.

Roffey, S. (2012). Pupil wellbeing – Teacher wellbeing: Two sides of the same coin? *Educational and Child Psychology*, 29(4), 8–17. https://doi.org/10.53841/bpsecp.2012.29.4.8

Spilt, J. L., Koomen, H. M. Y., & Thijs, J. T. (2011, July 12). Teacher Wellbeing: The Importance of Teacher–Student Relationships. *Educational Psychology Review*, 23(4), 457–477. https://doi.org/10.1007/s10648-011-9170-y

Teacher Wellbeing | INEE. (2022, May 24). In Teacher Wellbeing | INEE. https://inee.org/collections/teacher-wellbeing#:~:text=Defining%20Teacher%20Wellbeing&text=Wellbeing%20encompasses%20how%20teachers%20feel,et%20al.%2C%202015

Workplace well-being. (2009, June 15). In *Workplace well-being*. https://www.ilo.org/global/topics/safety-and-health-at-work/areasofwork/workplace-health-promotion-and-well-being/WCMS_118396/lang--en/index.htm

जवेरिया सलीम अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलूरु के स्कूल ऑफ कंटिन्यूइंग एजुकेशन में सहायक प्रोफ़ेसर हैं। वे 2009 से स्कूल गुणवत्ता मूल्यांकनकर्ता रही हैं और स्कूलों के लिए मान्यता-प्राप्त ISO 21001-2018 ऑडिटर हैं। उन्होंने भारत और मध्य पूर्व, दोनों जगह स्कूलों में बेहतर अधिगम और शिक्षार्थियों की ख़ुशी के मद्देनज़र स्कूल की संस्कृति में सुधार के लिए बड़े पैमाने पर काम किया है। वे शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षकों और अन्य पदाधिकारियों को गहन परामर्श और प्रशिक्षण देने के माध्यम से शिक्षा में प्रणालीगत सुधार करने के लिए जुनूनी और प्रतिबद्ध हैं। उनसे *jwairia.saleem@apu.edu.in* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : मनोहर नोतानी **पुनरीक्षण :** भरत त्रिपाठी **कॉपी एडिटर :** अनुज उपाध्याय

एक शैक्षिक माहौल में बचपन के आघात और उपचार

शिवानी तनेजा और सविता सोहित

औपचारिक शिक्षा की गुणवत्ता के बारे में आलोचनात्मक चर्चा शिक्षा पद्धति, सामग्री, भाषा और शैक्षणिक विषयों पर रही है। लेकिन जैसे-जैसे हमारे स्कूलों में अलग-अलग पृष्ठभूमियों के बच्चों की संख्या बढ़ रही है, इन पहलुओं के अलावा बच्चों के जीवन की थोड़ी और जाँच करने और उनके हित व कल्याण के पहलुओं को समझने का प्रयास करने से मदद मिलेगी।

यहाँ, हम हमारी संस्था मुस्कान[i] द्वारा कमज़ोर पृष्ठभूमि के बच्चों के लिए चलाए जा रहे स्कूल के अनुभवों को साझा कर रहे हैं। हमारे सभी बच्चे शहरी ग़रीब की श्रेणी में आते हैं और बचपन से कमाने के लिए काम कर रहे हैं। इनमें भोपाल शहर और उसके आस-पास रहने वाले विमुक्त आदिवासी समुदायों (DNT)[ii] के भी कई बच्चे हैं।

बचपन की वास्तविकताएँ

सोहिनी क़रीब 11 साल की थी जब वह हमारे पास आई थी। माँ के परिवार छोड़कर चले जाने से वह बहुत ग़ुस्सा थी और क़सम खाई थी कि वह उससे कभी बात नहीं करेगी। वह अपने घर की मरम्मत न करने और हर दिन शराब पीने के लिए अपने पिता से भी नाराज़ थी। जब उसकी बड़ी बहन की कम उम्र में शादी हुई तो वह और भी निराश हो गई। वह बहुत ही होनहार बच्ची थी। उसका अकादमिक प्रदर्शन अच्छा था लेकिन सामाजिक सम्बन्धों के मामले में वह कमज़ोर थी। अगर वह किसी चीज़ से परेशान होती तो उसे ख़ुश करना असम्भव था।

अमर एक साल से एक हॉस्टल में था जहाँ वार्डन लड़कों का अश्लील वीडियो बनाता था। आख़िरकार जब अमर हॉस्टल से भाग गया तब दिहाड़ी पर काम करने वाले उसके माता-पिता ने उसे हॉस्टल से निकाला और हमारे स्कूल में दाख़िल कर दिया। यहाँ वह अक्सर दूसरे बच्चों के साथ झगड़े और मारपीट करता था और अगर शिक्षक बीच-बचाव करने की कोशिश करते तो वह शिक्षक को भी मारने लगता।

रोहित के पिता घर में बच्चों की देखभाल करते थे जबकि माँ कबाड़ बीनने जाती थी। शराब की लत की वजह से पिता की मृत्यु हो गई। उस समय रोहित और उसके तीन भाई-बहन 1 से 10 वर्ष के बीच के थे। उसकी दो बहनों ने आत्महत्या कर ली थी। रोहित की लगभग 25 साल की युवा माँ को उसके ससुराल वाले लगातार ताने मारते थे। रोहित अक्सर घर पर नहीं सोता था और उसके चाचा इस बात पर उसकी पिटाई करते थे। स्कूल में वह अक्सर अपने छोटे भाइयों के साथ मारपीट करता था।

सामाजिक रूप से कमज़ोर समूहों में आघात (Trauma)

इन बच्चों के जीवन की कहानियाँ पढ़ते हुए आपको महसूस हो सकता है कि दूसरों की तुलना में ये बच्चे अधिक कठिन परिस्थितियों से आते हैं। लेकिन सच्चाई यह है कि शहरी ग़रीब, विमुक्त आदिवासी समुदायों, दलित और आदिवासी समुदाय का एक बड़ा हिस्सा पीढ़ी-दर-पीढ़ी दमन और भेदभाव का सामना करता आ रहा है, जिसकी गहरी छाप उनके मानस और कार्यक्षमता पर पड़ी है। उपभोक्तावाद, अभाव, भूमि विस्थापन, ज़बरन बेदख़ली, शहरी गन्दगी, बेरोज़गारी, हिंसा और मादक द्रव्यों का इन वंचित वर्गों पर जितना प्रभाव पड़ रहा है वैसा पहले कभी नहीं था। यह और भी सच हो सकता कि आहत जीवन जी रहे बच्चों की संख्या हमारी कल्पना से कहीं अधिक हो।

लिगेसी (Methot, 2019)[iii] पुस्तक में उपनिवेशीकरण के कारण अमरीका के मूल निवासियों पर पड़े दीर्घकालिक प्रभाव की चर्चा की गई है। मेथट पीढ़ी-दर-पीढ़ी चले आ रहे आघात की बात करती हैं। वे विस्तार से बताती हैं कि कैसे उपनिवेशवाद और आवासीय विद्यालयों ने लोगों पर अपनी छाप छोड़ी है और यहाँ तक कि जिन लोगों ने इस आघात को ख़ुद नहीं झेला है, वे भी इसके प्रभाव को सहन करते हैं। डॉ. कोल्क[iv] बचपन के प्रतिकूल अनुभवों और वयस्क जीवन पर उनके लम्बे समय तक प्रभाव के बारे में भी लिखते हैं। 'जीवन के पहले दशक में हुए दर्दनाक अनुभवों का अधिक व्यापक प्रभाव पड़ता है' (किसी एक दर्दनाक घटना की तुलना में, जैसे मृत्यु या हिंसा या जीवन को ख़तरे में डालने वाली कोई स्थिति) क्योंकि यह बच्चे के दुनिया को देखने-समझने के ढाँचे को पूरी तरह से प्रभावित करता है।

मूल निवासी समुदायों और काले समूहों पर ख़ासतौर से अन्दरूनी परिप्रेक्ष्य से किए गए अनुसन्धान और लेखन हमें उन बच्चों की मानसिक बनावट के बारे में अन्तर्दृष्टि प्रदान

करते हैं, जिनको विशेषाधिकार प्राप्त दुनिया में अब तक केवल 'ज़िद्दी' कहा जाता रहा है और जिनके माता-पिता की 'ग़रीबी, निरक्षरता, अज्ञानता और चिन्ता की कमी' के आधार पर उनकी नकारात्मक छवि बनाई जाती है। छत्तीसगढ़ के 200 स्कूलों में 2013 के एक अध्ययन में सामने आया कि लगभग 40 प्रतिशत शिक्षकों का बच्चों को शिक्षित कर पाने के बारे में नकारात्मक विचार था, जबकि केवल लगभग 13 प्रतिशत का ही विचार इस मामले में सकारात्मक था।[v]

जब ये बच्चे हमारे स्कूलों में प्रवेश करते हैं, तो उनको दोषी ठहराने या उन जैसों को 'सभ्य' बनाने की मानसिकता की बजाय हमें 'आघात के नज़रिए' या 'ट्रॉमा लेंस' की आवश्यकता होती है। जब हम उनके बचपन पर नज़र डालते हैं तो यह देखने के लिए मजबूर हो जाते हैं कि ये बच्चे जन्म से (या यहाँ तक कि जन्म से पहले भी) किस तरह की स्थितियों से गुज़र रहे हैं।

मूलभूत आवश्यकताओं को केवल भोजन और आश्रय तक ही सीमित नहीं किया जा सकता। इसमें स्नेह और सम्मान भी शामिल होना चाहिए। इनकी अनुपस्थिति में मादक द्रव्यों का सेवन, लापरवाही और आत्महत्या के प्रयास परिस्थितियों का सामना करने के उनके तरीक़ों का हिस्सा बन जाते हैं। जैसे-जैसे बच्चे बड़े होते हैं, दुनिया का सामना करने के उनके माता-पिता के तरीक़ों से वे कभी-कभी इन वास्तविकताओं को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अनुभव करते हैं। भेदभाव, दुर्व्यवहार और दुनिया से अलगाव हमारे देश में दलित, विमुक्त आदिवासी समुदायों या आदिवासी बच्चों के लिए सामान्य परिपाटी है।

पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलने वाला आघात

विमुक्त जनजातियों के लिए यह बदनामी उनके 'ठग' होने की औपनिवेशिक अवधारणा से शुरू हुई लेकिन दलित समुदायों के लिए तो यह हिन्दू वर्ण व्यवस्था का अभिशाप है। जितना अधिक इन समुदायों ने समाज और राज्य के विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों के साथ अन्तःक्रिया की है, उतना ही अधिक उन्हें अपमान और अलगाव सहन करने के लिए मजबूर किया गया है। आपराधिक जनजाति अधिनियम 1871 ने राज्य को 'आपराधिक जनजातियों' के बच्चों के सुधार के लिए उन्हें (परिवार से) अलग करने की अनुमति दी। हमारे देश में बाल संरक्षण तंत्र का हिस्सा बनने वाले अधिकाधिक बच्चे ऐसे कमज़ोर परिवारों से ही आते हैं। इन सामाजिक समूहों के अलगाव और पहलक़दमी (एजेंसी) से वंचित करने की अनादि काल से चली आ रही परिपाटी को स्वतंत्रता के बाद के भारत में भी ठीक नहीं किया गया है। चाहे दुकान हो, स्कूल हो, पुलिस थाना हो, अस्पताल हो या कोई सरकारी दफ़्तर, उन्हें इस तरह दुत्कारा जाता है जैसे वे इन्सान ही न हों।

हमारे लिए यह समझना कठिन नहीं होगा कि किसी व्यक्ति की मानसिक स्थिति पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा जब उसे नियमित रूप से अपमानित किया जा रहा हो। आपका जीवन पर नियंत्रण नहीं है क्योंकि कोई भी आपको परेशान कर सकता है, आपको हिरासत में ले सकता है या आपको आपके घर से निकाल सकता है। बाहरी स्रोत से होने वाले इस तरह के दमन का मुक़ाबला करने का कोई तरीक़ा नहीं है क्योंकि यह कहीं अधिक शक्तिशाली है। इस तरह यह दमन बढ़ता ही जाता है और उन लोगों को शिकार बनाता है जिन्हें आप वास्तव में प्यार करते हैं, क्योंकि वे ही आपसे कमज़ोर व असुरक्षित हैं।

दृढ़ता या टिके रहने की ताक़त हीलिंग या उपचार से अलग है। समुदायों में टिके रहने की ताक़त होती है। बच्चों की मदद और सुरक्षा के लिए व्यापक प्रयास किए जाते हैं। माता-पिता की ग़ैर-हाज़िरी में दूसरे लोग बच्चे को ख़ाना खिलाएँगे; अगर बारिश में किसी का घर टपक रहा है तो वह पड़ोसी के घर में सोएँगे। लेकिन लोगों के घाव भर नहीं पाए हैं। वे अपने घाव साथ लिए चलते हैं और ये पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ते रहते हैं। यह तब तक चलता रहेगा जब तक कि इस पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलने वाले सदमे को रोकने के लिए सचेत हस्तक्षेप न किया जाए।

उपचार (Healing) पर विचार

उपचार (यह चिकित्सकीय उपचार से अलग है। हीलिंग एक दीर्घकालिक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के ज़्यादा क़रीब है) शुरू करने के लिए, हमें पहले ख़ुद को प्रशिक्षित करने की ज़रूरत है ताकि हम प्रत्येक बच्चे को उसकी विशिष्टता में देख सकें, न कि उन श्रेणियों में जिसमें समाज ने उसे वर्गीकृत किया है। चीज़ों को समझने के लिए हमें पूरी परिस्थिति को जानने की आवश्यकता होती है, लेकिन हमारी कक्षाओं में उपचार तो हर एक बच्चे के स्तर पर होना होगा। उपचार के कुछ उपायों को, जिनसे हमें लगा हमारे बच्चों को मदद मिली है, हमने यहाँ समेकित किया है, हालाँकि यह हमेशा पर्याप्त नहीं होता है।

बच्चों को प्यार महसूस करने की ज़रूरत है

बच्चों को यह जानने की ज़रूरत है कि वे वांछित और महत्त्वपूर्ण हैं। जब लोग उनसे बात करते हैं और उन्हें सुनते हैं, तो वे स्वीकृत और आश्वस्त महसूस करते हैं। कोई उनकी परवाह करता है इस एहसास से वे सुरक्षित महसूस करते हैं। इसके लिए बच्चे से कक्षा, गलियारे या किसी अन्य स्थान पर मिलने के मौक़े निकाले जा सकते हैं। महज़ यह पूछ लेना कि उसने भोजन किया या नहीं या फिर उसे ठण्ड तो नहीं लग रही, उस बच्चे के लिए बहुत मायने रखता है जिसे यह ध्यान उसके परिवार के सदस्यों से नहीं मिलता, जो अपनी बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करने की कोशिश के बोझ से बेहद दबे हुए होते हैं।

दर्द महसूस करना ठीक है

एक ही समय बहुत सारी चीज़ों को सम्भालने की जद्दोजहद में कभी-कभी हम अपनी भावनाओं को बन्द कर देते हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि हम महसूस करना बन्द कर देते हैं, बल्कि भावनाओं को नज़रअन्दाज़ करके और दबाकर हम उन पर प्रतिक्रिया देना बन्द कर देते हैं। इसलिए जब कोई नकारात्मक भावना बाहर आती है, वह आवश्यकता से अधिक तीव्र हो सकती है। यह भी सम्भव है कि वह किसी अन्य घटना की प्रतिक्रिया हो। उदाहरण के लिए, स्कूल में कोहनी टकराने जैसी मामूली-सी बात पर हाथापाई हो सकती है। एक सुरक्षित और भरोसेमन्द वातावरण में कुछ बच्चे इस तरह अपनी रक्षा करने की प्रवृत्ति से बाहर निकल पाते हैं, लेकिन कुछ बच्चों के लिए ख़ुद को बचाने के लिए दूसरे पर हावी होने का तरीक़ा ज़रूरी होता है। उम्र बढ़ने के साथ या किसी घटना के लम्बे समय बाद बच्चे यह पहचानने में सक्षम हो पाते हैं कि वे उत्तेजित हो जाते हैं। जब एक सुरक्षित माहौल बनाया जाता है तो अधिकांश बच्चे अपनी भावनाओं के बारे में बात कर पाते हैं। कुछ बच्चों के लिए सुरक्षित माहौल एक सामूहिक सत्र हो सकता है और दूसरों के लिए यह किसी से अकेले में बातचीत करना हो सकता है।

लेखन, कला और शारीरिक गतिविधियों से अभिव्यक्ति से इस तरह का उपचार सम्भव है। जब बच्चे दर्द से जूझने में सक्षम हो जाते हैं तो वे अपनी कई भावनाओं या अनुभवों को छोड़ना सीखते हैं। जीवन में भविष्य के विकल्प तब एक नई जगह पर बनाए जाते हैं न कि दबी हुई भावनाओं के आधार पर।

मैं प्रभावित और नियंत्रित कर सकती/ सकता हूँ

स्कूल में हम सोच-समझकर बच्चों की एजेंसी (पहलक़दमी व स्वायत्तता) को बनाने और मज़बूत करने की कोशिश करते हैं। हम यह सुनिश्चित करना पसन्द करते हैं कि कई मामलों में बच्चों को अपनी बात कहने का अधिकार रहे; उन्हें यह चुनने की पूरी आज़ादी है कि वे क्या खाते हैं, कैसे कपड़े पहनते हैं, वे कौन-सी भाषाएँ बोलते हैं, क्या लिखते हैं या चित्र बनाते हैं और हमारे बारे में क्या प्रतिक्रिया देते हैं।

यह भागीदारी बच्चों को नियंत्रण और आत्मविश्वास की भावना देती है। वे समझते हैं कि बिना किसी भय के जीना क्या है और यह जीवन का 'सामान्य' तरीक़ा होना चाहिए। चाहे घर हो या बाहर आमतौर पर अस्थिर माहौल में रहने वाले बच्चों को केवल उनकी जाति के आधार पर निशाना बनाया जाता है। इसलिए उनका शरीर और दिमाग़ अक्सर 'भागने' या 'लड़ने' की अवस्था में होता है। लेकिन वे जो महसूस कर रहे हैं उसे स्वीकार करते हुए जैसे-जैसे हम उनकी एजेंसी पर काम करते हैं, वे अपनी जगह पर अपना इख़्तियार जताना सीखते हैं। उदाहरण के लिए, जब एक किशोर ने 'कंजर' समुदाय के बच्चों के एक समूह को उनके समुदाय के नाम से गाली दी तो इन बच्चों को ख़तरा महसूस हुआ और वे स्कूल छोड़ने की सोचने लगे। फिर एक चर्चा हुई जिसमें विद्यार्थियों ने एक-दूसरे से आमने-सामने बात की, यह देखते हुए कि एक व्यक्ति की टिप्पणियों का दूसरों पर क्या प्रभाव पड़ा। उन्होंने यह स्वीकारा कि दुनिया ने हम सभी को एक-दूसरे के प्रति थोड़ा अधिक क्रूर बना दिया है और यह देखने की ज़रूरत है कि एक-दूसरे को क्षमा करने की कोई गुंजाइश है या नहीं।

मैं दूसरों के साथ कैसा व्यवहार कर रहा हूँ?

कभी-कभी लोग यह देखने में असमर्थ होते हैं कि उनका व्यवहार किसी दूसरे को ख़ास तरीक़े से कार्य करने के लिए प्रभावित कर रहा है। जब मैं अपने सहपाठी को अपमानजनक या आपत्तिजनक नाम से बुलाता हूँ, तो उसे कैसा लगता है? जब कोई आपसे अपनी कहानी साझा करने के लिए कहता है तो आपको कैसा महसूस होता है? मैं कैसे दिखा सकता हूँ कि मुझे उसकी परवाह है? मेरा स्वर कैसा है, क्या यह सम्मानजनक है? इस तरह की बातचीत और चिन्तन के माध्यम से किशोरों और बच्चों को उनके व्यवहार के प्रभाव को समझने में मदद करने की आवश्यकता है। सुनने, समझने, व्यक्त करने, क्षमा माँगने और रिश्तों में आगे बढ़ने के लिए हमारे संघर्षों को सुलझाने और भावनाओं के जाल को सम्भालने के आवश्यक कौशल विकसित करने की ज़रूरत है। हमारे व्यवहार से हुए नुक़सान को नज़रअन्दाज़ करना हमारा स्वभाव नहीं बनना चाहिए।

बाहर से आने वाली नकारात्मकता से जूझने के लिए प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर एक स्तर की प्रतिरोधक क्षमता या एक तरह की कठोरता निर्मित होती है, लेकिन यह केवल ख़ुद को बचाने का तरीक़ा है। क्रोध की अभिव्यक्ति और क्रोध या आक्रोश को सम्भालना, इन भावनाओं के पीछे के कारणों को समझना, दूसरे को और ख़ुद को अभिव्यक्त करने का मौक़ा देना। यह आवश्यक है कि ये सब हमारे सचेत संवादों और हमारी जगहों पर किए जाने वाले कार्यों का हिस्सा बनें।

एक-दूसरे से संवाद करना

हम बच्चों को ख़ुद को अभिव्यक्त करने के लिए बहुत सारे अवसर बनाते हैं। बहुत कम ही ऐसा होता है कि कोई बच्चा खुलकर न बोल पाता हो। अपने विचार साझा करते हुए बच्चे धीरे-धीरे दुनिया पर भरोसा करना सीखते हैं। भूख के अनुभवों को सुनकर पूरी कक्षा ठहर-सी जाती है और समूह के बच्चे एक-दूसरे से जुड़ाव महसूस कर पाते हैं। मृत्यु पर बातचीत बच्चों को अपनी अनसुलझी भावनाओं को साझा करने में सक्षम बनाती है। बच्चे अक्सर इन चीज़ों के बारे में बात करना चाहते हैं, लेकिन उन्हें कोई वयस्क नहीं मिल पाता है जिससे

वे बात कर सकें। इसलिए, हम अपनी कई पाठ योजनाओं में बातचीत को शामिल करते हैं।

आप अपनी ग़लती से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण हैं

बच्चों को अक्सर उन कार्यों के लिए दोषी ठहराया जाता हैं जो उनके नियंत्रण में नहीं होते हैं या वे नहीं जानते कि उस कार्य को कैसे ठीक किया जाए। बार-बार इसका अनुभव करने के बाद बच्चे उन स्थितियों से बचने लगते हैं जहाँ उन्हें लगता है कि वे किसी भी तरह के सन्देह के दायरे में आ सकते हैं।

हम अपने कार्यों की ज़िम्मेदारी लेना तब शुरू करते हैं जब हम जानते हैं कि हमें दण्डित नहीं किया जाएगा कि हम 'बुरे' नहीं हैं; कि लड़खड़ाना, झिझकना, नहीं जानना ठीक है। यह एक अलग तरह की मदद है जिसकी बच्चों को आवश्यकता होती है। किसी समस्या को साझा करना और मदद माँगना जीवन का एक ज़रूरी कौशल है। जैसे-जैसे हम जीवन का सामना करने के रचनात्मक तरीक़े सीखते हैं, वैसे-वैसे सम्भव है कि ख़राब अंकों या किसी अज्ञात के डर से बच्चों या युवाओं के घबराने की कहानियाँ भी कम होने लगें।

दोस्त और समूह कार्य

कइयों के लिए स्कूल ऐसे स्थान होते हैं जहाँ बच्चे अपने परिवार के बाहर के लोगों के साथ अन्तःक्रिया करते हैं। लेकिन वास्तव में सामाजिक पदानुक्रम यहाँ भी काम करते हैं। इन हाशियाकृत समूहों से आने वाले बच्चों में अन्य बच्चों के साथ घुलने-मिलने में बहुत झिझक होती है। साथ ही किसी के क्रोध से बचने के लिए स्वयं को अदृश्य बनाना एक सीखा हुआ व्यवहार भी होता है।

वयस्कों के रूप में, हमें सचेत रूप से मित्रता और मिल-जुलकर किए जाने वाले कार्य को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता हो सकती है, जिससे उन्हें यह समझने में मदद मिले कि शक्ति संरचनाओं के परे जाकर दूसरों के साथ कैसे कार्य किया जा सकता है। मिल-जुलकर एक बड़ा जिगसॉ पज़ल बनाना, खेतीबाड़ी करना और साधारण-सा चार्ट तैयार करना ऐसी ही कुछ गतिविधियाँ हैं।

जब घर में चीज़ें ठीक नहीं चल रही होती हैं तब दोस्ती एक सम्बल देती है। जैसे-जैसे बच्चे अपने स्कूल में सहज महसूस करने लगते हैं, वे अक्सर अनजाने में ही अपने फ़ैसलों में मदद और एकजुटता के लिए अपने साथियों की तरफ़ देखते हैं। उदाहरण के लिए, प्रतिदिन विद्यालय आऊँ या नहीं जैसा निर्णय भी साथियों की राय से प्रभावित होता है। ऐसा कम ही होता है कि बच्चों के अपने सीमित दायरे में ऐसे रोल मॉडल या ऐसे लोग मिलें जो उन्हें अपने सपनों और आकांक्षाओं पर विश्वास करने के लिए प्रोत्साहित करें।

शारीरिक स्पर्श महत्त्वपूर्ण है

गले लगाना या चलते समय हाथ पकड़ना हमारे स्कूलों में एक सहज व्यवहार की तरह होना चाहिए। बेशक वयस्कों को पता होना चाहिए कि बच्चे को स्पर्श करना स्नेह दर्शाने का तरीक़ा है (उसी तरह जैसे परिवार का कोई सदस्य ऐसा करता है) और वे कोई अनुचित व्यवहार नहीं कर रहे हैं और बच्चे को मना करने की छूट है। बच्चों की निजता और सुरक्षा सम्बन्धी चिन्ताओं के प्रति सचेत रहते हुए यह समझना ज़रूरी है कि मानवीय स्पर्श कई तरह से सुकून देता है। ख़ासकर ऐसी स्थिति में जब किशोर/ बच्चे को परिवार में उपेक्षित किया जाता है। लेखक को अपनी बेटी की इस टिप्पणी से बड़ा आश्चर्य हुआ जब एक दिन स्कूल से घर आकर उसने ख़ुशी-ख़ुशी बताया कि उसकी शिक्षिका ने 'मुझसे बात करते हुए मेरा सिर थपथपाया'।

स्पर्श की सहजता आसानी से पूरी कक्षा तक विस्तृत की जा सकती है। चर्चा और साझा करने के दौरान या सर्कल टाइम के दौरान, बच्चों को एक-दूसरे का हाथ पकड़ने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है जो उन्हें एक-दूसरे के साथ संगति का एहसास देता है। वे दूसरों के साथ समानुभूति रखना, सहायता करना और दूसरे के कठिन क्षणों पर नहीं हँसना सीखते हैं।

स्वयं से जुड़ना

बच्चों को ध्यान के अभ्यास करवाए जा सकते हैं जिसमें वे अपनी आँखें बन्द करके अपने शरीर के विभिन्न अंगों को महसूस करते हैं। वे दिल पर हाथ रखकर अपने दिल की धड़कन को महसूस करते हैं। इससे उन्हें अपने आप से जुड़ने में मदद मिलती है। कुछ बच्चों को अपनी आँखें बन्द करने या अपने साथ रहने में कठिनाई होती है। एक बच्ची ने बताया कि कबाड़ बीनने के दौरान उसने अपना हाथ एक पाइप में डाल दिया जिसमें एक सड़ा हुआ जानवर था। उसकी बदबू उसके हाथों से अब तक नहीं गई है। यह बताते हुए उसने अपना हाथ दूर करते हुए अपनी नाक सिकोड़ ली। यह सम्भावना कम ही है कि उसने इस अनुभव को पहले किसी के साथ साझा किया हो।

सारांश

एक शिक्षक को इस बात का एहसास होना चाहिए कि बच्चों के हित और भलाई किस चीज़ से प्रभावित हो रही है; बच्ची की रोज़मर्रा की ज़िन्दगी कैसी है : क्या हिंसा होती है, भूख लगने पर बच्ची क्या करती है, बच्ची क्या देख और सुन रही है? उपचार तत्काल नहीं होता है क्योंकि क्षति कई स्तरों पर हुई है और हमें बच्चे के साथ रहने की आवश्यकता है जब तक वह अपने आन्तरिक स्व को नहीं जान पाता/ पाती। 'अकेले काम करना' टीम वर्क जितना ही महत्त्वपूर्ण है। जो कौशल हमें

उपलब्ध हैं उनके आधार पर, हमें बच्चे को कला, शारीरिक गति, नृत्य, संगीत और खेल से जुड़ी कई गतिविधियों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करने की ज़रूरत है। जीवन जितना अधिक भरा-पूरा जिया जाता है, उतनी ही अधिक सम्भावना होती है कि वह आन्तरिक सन्तुलन पा सके।

एक देश के रूप में, हमने अपने सबसे हाशिए पर रहने वाले समुदायों के बच्चों को निराश किया है। जबकि हमें अपनी कक्षाओं में इस क्षति को भरने की आवश्यकता है, वहीं राज्य को भी यह पहचानने की ज़रूरत है कि भेदभाव और नियोजित हमले लोगों को अलग-थलग करते हैं। राज्य की यह भी ज़िम्मेदारी है कि वह असमान नागरिकता को ख़त्म करके क्षतिपूर्ति और न्याय की ओर बढ़े।

*बच्चों की पहचान सुरक्षित रखने के लिए नाम बदल दिए गए हैं।

Endnotes

i Muskaan is a non-profit, non-governmental organisation working with marginalised communities living in the bastis in Bhopal, Madhya Pradesh.

ii The British Government had listed over 150 communities under the Criminal Tribes Act which allowed the administration to forcefully 'settle' members of these communities into camps from where they could be called upon as bonded labour, and to separate children from their parents. It was considered that everyone born in the community would be deemed criminal and could be treated with suspicion. After the repeal of this Act in 1952, the communities henceforth have been referred to as 'denotified'.

iii Methot, Suzanne (2019) Legacy: Trauma, Story and Indigenous Healing. ECW Press, Canada.

iv Bessel van der Kolk (2014) The Body Keeps the Score: Brain, Mind, and Body in the Healing of Trauma. Viking.

v Padma M. Sarangapani and Archana Mehendale (2013) Multi-grade Multi-level (MGML) Programme in Chhattisgarh: An Evaluation. Tata Institute of Social Sciences.

शिवानी तनेजा पिछले 25 वर्षों से भोपाल और उसके आस-पास विमुक्त आदिवासी पृष्ठभूमि और ग़रीब समुदायों के लोगों के बीच काम कर रही हैं। उनका मानना है कि शिक्षा को एक अलग-थलग शैक्षणिक घटना की तरह नहीं देखा जा सकता और बतौर शिक्षाविद, हमें बच्चे के हित व कल्याण और सशक्तिकरण को उनकी शैक्षिक यात्रा के कोर के रूप में देखने की आवश्यकता है। यह उनकी चिन्ताओं और कार्य प्राथमिकताओं में परिलक्षित होता है, जैसे कठिन परिस्थितियों में गुज़रने वाले बचपन के बीच बच्चों की सामूहिक एजेंसी, मानसिक स्वास्थ्य और सामाजिक न्याय के लिए पहल करना। ख़ुद को दिल से एक शिक्षिका मानने वाली शिवानी मुस्कान में हर दिन एक कक्षा का हिस्सा बनकर उसका आनन्द लेती हैं और शैक्षणिक हस्तक्षेपों के प्रति विद्यार्थियों की प्रतिक्रियाओं का अवलोकन करते हुए उनसे सीखती हैं। उनसे *shivani@muskaan.org* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

सविता सोहित पिछले 15 सालों से मुस्कान में काम कर रही हैं। उन्हें प्राथमिक कक्षाओं में बच्चों के साथ काम करने और सीखने में आनन्द आता है। उन्होंने अपनी शिक्षण विधियों में बहु-भाषी शिक्षा पद्धति को अपनाया है। वह समुदायों में युवाओं और वयस्कों के साथ भी काम करती हैं और सम्मान और सामाजिक न्याय के लिए उनके संघर्ष में उनका समर्थन करती हैं। उनसे *savita.sohit@rediffmail.com* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : अनु गुप्ता **पुनरीक्षण :** लोकेश मालती प्रकाश **कॉपी एडिटर :** अनुज उपाध्याय

परिवार के विस्तार के रूप में स्कूल

अनिल सिंह

मार्च 2020 में शुरू हुई लगभग दो साल की स्कूल तालाबन्दी और उसके बाद की स्वास्थ्य, रोज़गार और सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी चिन्ताओं ने हमारे समाज के हाशिए पर रहने वाले वर्गों को विशेष रूप से प्रभावित किया है। उन सबमें भी, बच्चे गम्भीर स्थिति में हैं क्योंकि उन्होंने ये सब चुपचाप देखा है और वे चिन्ताओं, अनिश्चितताओं और अभावों को झेलते आ रहे हैं। इस दौरान वयस्कों ने तो परिस्थितियों से निपटने के तरीक़े खोजे, लेकिन बच्चों के पास आमतौर पर कम ही विकल्प थे। बच्चों के लिए, स्कूल एक ऐसा स्थान है जहाँ वे दूसरे बच्चों के साथ बातचीत करते हैं, ख़ुद को अभिव्यक्त करते हैं, नए दोस्त बनाते हैं, रचनात्मक गतिविधियों में शामिल होकर नई चीज़ें सीखते हैं और एक उपलब्धि की भावना महसूस करने के अवसर प्राप्त करते हैं। ऐसा करते समय, वे अस्थाई रूप से अपने घरों और आस-पास के तनावपूर्ण माहौल से दूर हो जाते हैं, जो उन्हें किसी भी भावनात्मक संकट से बहुत हद तक उबरने में मदद करता है। सैद्धान्तिक रूप से यह एक अच्छा विचार लगता है, लेकिन व्यवहार में इसके प्रति स्कूली स्तर पर जागरूकता और संवेदनशीलता की बहुत आवश्यकता है।

हमें याद रखना चाहिए कि कमज़ोर सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले समुदायों के बच्चे अपनी बात अभिव्यक्त करने में भी संघर्ष करते हैं और इन परिस्थितियों में, शिक्षकों के प्रयास और उत्तरदायित्व बहुत बढ़ जाते हैं। यह बहुत अच्छा होगा यदि स्कूल भावनात्मक मदद के साथ-साथ आत्म-आश्वासन, प्रेम, सुरक्षा और अपनेपन की भावना को बढ़ावा दे सकें; जहाँ शिक्षक, एक वयस्क के रूप में, बच्चों के साथ मित्रवत व्यवहार करके और उन्हें भरोसा देकर उनका सहयोग कर सकते हैं और चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों में ख़ुद की देखभाल करने में बच्चों की मदद कर सकते हैं।

हमारे स्कूल के अधिकांश विद्यार्थी झुग्गी-झोपड़ियों में रहते हैं। लॉकडाउन के दौरान कई लोगों की नौकरियाँ चली गईं। रोज़गार के लिए सबसे बड़ा उद्योग, भवन निर्माण सेक्टर, बन्द रहा। अपने दैनिक ख़र्चों को पूरा करने के लिए लोगों ने, उनके पास जो थोड़ी-बहुत बचत थी, उसका भी उपयोग किया; और वर्तमान में वे कर्ज़ के बोझ तले दबे हुए हैं जबकि उनकी आय कम ही बनी हुई है। इस सबका तनाव पूरा परिवार ही महसूस करता है। इन कठिन परिस्थितियों में बच्चों के साथ हमारे कुछ अनुभव हैं, और हम उन्हें स्कूल में किस तरह से मदद करने की कोशिश कर रहे हैं, इस बारे में आगे बात की गई है।

चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों में बच्चे

महक नौ साल की बच्ची है। उसके पिता सफ़ाईकर्मी हैं। वे लगभग एक साल से बेरोज़गार थे। वे अपने परिवार के साथ कुछ महीनों के लिए गाँव वापस चले गए। लेकिन गाँव में भी बिना खेती-बाड़ी के लम्बे समय तक पूरे परिवार का भरण-पोषण करना मुश्किल था। शहर में कम-से-कम कुछ काम मिल जाता था तो वे वापस आ गए। अब हर रोज़ हर चीज़ की कमी रहती है। ख़ाने का ख़र्च कर्ज़ लेकर पूरा किया जाता है। कभी-कभार कोई काम मिल जाता है, लेकिन घर में हर समय अनिश्चितता और तनाव का माहौल बना रहता है।

जब स्कूल फिर से खुला तो महक आने लगी, लेकिन वह बहुत डरी हुई थी। उसका बाक़ी बच्चों के साथ घुलने-मिलने, खेलने और मस्ती करने का पहले का तरीक़ा बदल गया था। सुबह की संगीत सभा में, वह कुछ समय तक गाती रही, लेकिन उसका चेहरा उतरा हुआ था। हमने यह देखकर सोचा कि उससे बात करने की ज़रूरत है। हम तीन शिक्षकों ने इस काम को आपस में बाँट लिया। मेरा काम था कि मैं खेल के दौरान उससे बात करूँ और उसे उसकी भावनाओं और विचारों के बारे में बात करने का मौक़ा दूँ। एक अन्य शिक्षक अंकित ने उसके साथ बैठने और खाने की ज़िम्मेदारी ली। तीसरी अध्यापिका सोनम ने उसे कक्षा में अधिक भागीदारी करने में मदद करने की ज़िम्मेदारी ली। हमारे स्कूल में दिन की कक्षा प्रक्रिया और प्रत्येक बच्चे पर चर्चा करने के लिए हमारी दैनिक बैठक होती है। हम रोज़ाना इसका दस्तावेज़ीकरण भी करते हैं।

महक से बात करते हुए मुझे पता चला कि पिछली रात उसके घर में किसी ने ख़ाना नहीं खाया था। घर में ज़्यादा पैसे भी नहीं बचे थे। मैं मैदान में टहलते हुए उससे बातें करता रहा। मैंने मेरे परिवार के शुरुआती दिनों के संघर्षों के बारे में बात की। साथ ही, मैंने उससे कहा कि बुरा वक़्त बीत जाता है। उसने अपने दादा-दादी के बीच लड़ाई के बारे में बताया। मैंने

यह भी बताया कि मैं बचपन में नए कपड़े ख़रीदने या अपनी फीस भरने में सक्षम नहीं था। फिर हम लगभग हर रोज़ बात करते थे। अंकित कई बार अपना नाश्ता महक के साथ बाँटता था। हम अक्सर कई बच्चों को इकट्ठा करके सबका ख़ाना पूल करके उसे आपस में बाँटते थे। सोनम ने मुझे बताया कि महक ने कक्षा में पक्षियों और फूलों पर एक कविता लिखी। उसने इस कविता का एक पोस्टर भी बनाया और उसे कक्षा में लगाया।

15-20 दिनों के इस नियोजित काम के बाद, हमने महसूस किया कि महक लगभग अपने सामान्य रूप में वापस आ गई थी। वह न केवल अन्य बच्चों के साथ खेलती थी बल्कि कक्षा में भी सक्रिय रूप से भाग लेती थी।

हम जानते हैं कि महक केवल छह घण्टे स्कूल में रहती है और बाक़ी के 18 घण्टे उसे अपने परिवार के साथ रहना और उन्हीं मुश्किल हालात का सामना करना है। हालाँकि, इन छह घण्टों को भावनात्मक रूप से मददगार बनाने, बच्चों को उनके खोए हुए आत्मविश्वास को वापस पाने और उन्हें ख़ुद को बड़े समाज के हिस्से के रूप में देखने में मदद करने के लिए, हमें उनके प्रति जागरूक और संवेदनशील होना चाहिए। हो सकता है कि हम महक के जीवन में कोई स्थायी या प्रत्यक्ष बदलाव न ला पाएँ, लेकिन व्यक्तिगत रूप से ख़ुद की देखभाल करने और इस कठिन समय से निकलने में हम निश्चित रूप से उसकी मदद कर सकते हैं।

रोशनी 13 साल की है और झारखण्ड से भोपाल आई थी। वह हमारे स्कूल में तीन साल से है। उसके पिता ने पुनर्विवाह किया है और एक पेंटर के रूप में काम करते हैं। स्कूल खुलने के बाद जब रोशनी वापस आई तो काफ़ी कमज़ोर दिख रही थी। हालाँकि वह कभी भी बहुत स्वस्थ नहीं रही थी, लेकिन अब बार-बार अपने गाँव जाना, वहाँ खाने की कमी, वापस आना और घर में बन्द रहना, स्कूल से दूर रहना आदि कारणों से उसकी सेहत में और भी गिरावट आई है। स्कूल में गर्म, ताज़ा दोपहर का भोजन प्राप्त करना उसके लिए वास्तव में एक बड़ी बात थी। स्कूल आने के बाद से हमने उसके स्वास्थ्य में सुधार देखा और दिन में कम-से-कम एक बार सही ख़ाने के महत्त्व को समझा।

पहले रसोई चलाने में कई तरह की व्यावहारिक दिक़्क़तों को देखते हुए हमने इसे बन्द करने और अपना-अपना ख़ाना लाने का फ़ैसला किया था। फिर हमने महसूस किया कि कुछ बच्चों के लिए स्कूल का लंच एक बड़ी राहत है और इसे हर क़ीमत पर जारी रखा जाना चाहिए। हमें कई दानदाता मिल गए और हमने किचन को चालू रखा। रोशनी इस रसोई की सबसे बड़ी लाभार्थी थी, क्योंकि उसे ख़ाने की सख़्त ज़रूरत थी।

रोशनी केवल भोजपुरी बोलती थी। हमने उससे टूटी-फूटी भोजपुरी में बात करना शुरू किया। उसकी बहन अंकिता भी स्कूल आती थी। दोनों लगभग एक ही उम्र की थीं। वे बहनों से ज़्यादा दोस्त की तरह थीं। लेकिन उनके घर का माहौल अच्छा नहीं था। फिर सौतेले भाई का भी मामला था। जब माता-पिता काम के लिए बाहर जाते थे, तब उन्हें लम्बे समय तक उसके साथ रहना पड़ता था।

हालाँकि, वे नियमित रूप से स्कूल आ रही थीं लेकिन दैनिक गतिविधियों में भाग नहीं लेती थीं। यह ऐसा था मानो वे सब काम मशीनी तरीक़े से कर रही हों। हमने अपनी दैनिक बैठक में इस मुद्दे पर चर्चा की। हमें पता चला कि वे घर का सारा काम कर रही हैं, लेकिन इस काम करने को कोई तवज्जो नहीं मिलती थी और न ही कोई इसका महत्त्व समझता था। उस दौरान हमने स्कूल में 'उमंग खेल मेले' का आयोजन किया और दो अन्य बच्चों के साथ रोशनी और अंकिता को पूरे कार्यक्रम के समन्वय का ज़िम्मा सौंपा गया। गणित के शिक्षक अंकित उनकी टीम में थे। और फिर कुछ जादू हुआ! अंकिता और रोशनी हमारे साथ हर दिन की गतिविधि की योजना बना रही थीं। वे बच्चों की टीमें चुन रही थीं, आवश्यक वस्तुओं की सूची बना रही थीं और सारा हिसाब-क़िताब रख रही थीं। दोनों ने साथ मिलकर इस तीन दिवसीय आयोजन के प्रत्येक दिन की रिपोर्ट लिखी।

हमने सुबह की संगीत सभा में रोशनी और अंकिता के काम की सराहना की। हमने सभी को बताया कि उनके माता-पिता काम पर गए होते हैं और अंकिता और रोशनी अपने छोटे भाई की देखभाल करने के साथ-साथ घर का सारा काम करती हैं, नियमित रूप से स्कूल आती हैं और इस सबके साथ उन्होंने इस कार्यक्रम का भी बख़ूबी संचालन किया। सभी ने उनके लिए तालियाँ बजाईं। स्कूल की ओर से नमिता ने उन्हें एक-एक कहानी की क़िताब दी। आने वाले दिनों में अंकिता हिन्दी में बेहतर हो गई और रोशनी गणित में अच्छा करने लगी। वे अगले साल कक्षा-9 में जाएँगी और उन्हें इस बात का दुख होता है कि उन्हें यह स्कूल छोड़ना पड़ेगा।

गोपाल 12 साल का है। वह पास की झोपड़ी में अपने दादा-दादी के साथ रहता है। उसके पास चार भैंसें हैं और वह अपने दादा-दादी के साथ दूध की एक छोटी डेयरी चलाता है। सुबह-सुबह अपनी भैंसों को चारा खिलाकर वह साइकिल पर दूध बाँटने जाता है और फिर स्कूल आता है। उसके माता-पिता गाँव में हैं लेकिन शायद कुछ पारिवारिक विवाद के कारण न तो वे और न ही गोपाल एक-दूसरे से मिलने जाते हैं। उसके दादा-दादी ही उसके लिए सब कुछ रहे हैं। महामारी के दौरान दादा का निधन हो गया। गोपाल के लिए यह सबसे कठिन समय था। स्कूल बन्द रहा। लेकिन खेल शिक्षक विजय और

मैं उससे नियमित तौर से मिलते रहे। जब स्कूल फिर से खुला तो वह घर और डेयरी का सारा काम करने के बाद स्कूल आने लगा। उसे 'स्कूली परिवार' की बहुत ज़रूरत थी। हमें भी ऐसा ही लगा। एक दिन हम सभी बच्चों के साथ उसकी डेयरी पर गए। हमने स्कूल की रसोई से ख़ाना लिया और सबने वहीं खाया। उसकी दादी भावुक होकर रोने लगीं। भरे गले से उन्होंने बुन्देली में कहा कि, "गोपाल अनाथ नहीं है; स्कूल उसका परिवार है।" उन्होंने सभी बच्चों को गुड़ दिया।

गोपाल के लिए परिवार की भरपाई करने के लिए कोई क्या कर सकता है? अगर स्कूल उसके साथ है और उसकी देखभाल करता है, तो गोपाल के लिए इतना ही काफ़ी है। गोपाल स्कूल में दूध देता है और उसका हिसाब रखता है क्योंकि यही उसकी रोज़ी-रोटी है। लेकिन हाँ, कभी-कभी वह मुफ़्त में छाछ लेकर आता है और स्कूल के किचन में उसकी कढ़ी बनती है और सब लोग मज़े से खाते हैं।

आनन्द निकेतन में हमारी सुबह की सभा बहुत सारे गानों और संगीत के साथ होती है, ताकि बच्चे अपने दिन की शुरुआत एक आनन्दमय, मुक्त और सहभागी वातावरण में कर सकें। बच्चों द्वारा अपने नज़रियों को सामने रखने के लिए दैनिक मंच सत्र, उनके दबे हुए विचारों और भावनाओं को सामने लाने और शिक्षकों को बच्चों के व्यक्तिगत जीवन के कई पहलुओं को समझने में मदद करने के लिहाज़ से काफ़ी हद तक सफल रहा है। शिक्षकों ने भी इस प्रक्रिया में समानता का माहौल बनाते हुए अपने विचारों को साझा करना शुरू कर दिया है। बच्चों को यह जानकर बड़ी राहत मिलती है कि उनके शिक्षक भी उनकी तरह सामान्य जीवन जीते हैं; उनके भी अपने डर, चिन्ताएँ और कमियाँ हैं और साथ मिलकर हम एक-दूसरे को भावनात्मक सहयोग दे सकते हैं। महक, रोशनी, अंकिता और गोपाल के मामलों में यह स्पष्ट रूप से देखा गया है कि इस स्कूल के माहौल और प्रक्रिया ने उनकी अत्यधिक मदद की।

*बच्चों की पहचान को सुरक्षित रखने के लिए नाम बदल दिए गए हैं।

अनिल सिंह पिछले 15 वर्षों से शिक्षा, विशेषकर स्कूली शिक्षा, के क्षेत्र में सक्रिय हैं। हिन्दी भाषा और सामाजिक विज्ञान पढ़ाने के साथ-साथ वे रंगमंच को बच्चों के दैनिक कार्यों से जोड़ते हैं। कहानी कहने में उनकी विशेष रुचि है। कक्षा के अनुभवों और शिक्षा के अन्य मुद्दों पर उनके लेख नियमित रूप से प्रकाशित होते हैं। वे आनन्द निकेतन डेमोक्रेटिक स्कूल, भोपाल में शिक्षा के एक वैकल्पिक मॉडल से जुड़े रहे हैं। वर्तमान में, वे 'पराग' के साथ उसकी पेशेवर विकास सम्बन्धी पहलों में फैकल्टी के रूप में काम कर रहे हैं। उनसे *bihuanandanil@gmail.com* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : विवेक मलिक **पुनरीक्षण :** भरत त्रिपाठी **कॉपी एडिटर :** अनुज उपाध्याय

संघर्ष समाधान के लिए सामाजिक-भावनात्मक कौशल

अनुजा वेंकटरमन

किसी भी कक्षा में शिक्षकों की बच्चों से कई अपेक्षाएँ होती हैं। उदाहरण के लिए, जब कुछ दिलचस्प हो तो बच्चे अति उत्साहित न हों और शोर न मचाएँ; अपने दोस्त से मार खाने पर इतना ग़ुस्सा न हों कि पलटकर उस पर वार करें और बात को बढ़ा दें; अपनी स्टेशनरी या किताबों को लेकर मालिक़ाना रवैए को दरकिनार करते हुए, आवश्यकता पड़ने पर उन्हें साझा कर पाएँ; किसी स्कूल यात्रा पर बस में शिक्षक के बगल में कौन बैठेगा या दूसरी कक्षा से डस्टर कौन माँग कर लाएगा या अगले प्रश्न का उत्तर कौन देगा जैसी बातों के लिए झगड़ा नहीं करें; और अपनी बारी का इन्तज़ार कर पाएँ।

एक वयस्क के दृष्टिकोण से जो अपेक्षाएँ उचित प्रतीत होती हैं, कभी-कभी छोटे बच्चों के लिए वे काफ़ी चुनौतीपूर्ण होती हैं। दैनिक जीवन में आने वाली कई चुनौतियों का न केवल एक संज्ञानात्मक पहलू होता है, बल्कि उनकी भावनात्मक और सामाजिक प्रासंगिकता भी होती है।

झगड़ों को शान्तिपूर्ण ढंग से नियंत्रित करने की क्षमता और बच्चे की भावनात्मक बुद्धिमत्ता के बीच के सम्बन्ध के बारे में सीखना बहुत उपयोगी हो सकता है। यह शिक्षकों को उनकी स्वयं की अपेक्षाओं को नियंत्रित करने के साथ, क्या और कैसे पढ़ाया जाए के सम्बन्ध में योजना बनाने में मदद कर सकता है ताकि विद्यार्थी सीख सकें, बढ़ सकें और उनमें से कुछ अपेक्षाओं को पूरा कर सकें। यह विद्यार्थियों और शिक्षकों को स्कूल में एक ख़ुशनुमा दिन बिताने में भी मददगार हो सकता है।

अन्तःवैयक्तिक बुद्धिमता का सम्बन्ध इस बात से होता है कि हम अपनी भावनाओं को कैसे सम्भालते हैं, जबकि अन्तर्वैयक्तिक बुद्धिमता का सम्बन्ध इस बात से होता है कि हम दूसरों की भावनाओं पर किस प्रकार की प्रतिक्रिया देते हैं। ये दोनों रचनात्मक और समस्या-समाधान करने के तरीक़े से व्यवहार करने की हमारी क्षमता के लिए महत्त्वपूर्ण हैं।

सामाजिक-भावनात्मक शिक्षा (एसईएल)

विद्यार्थियों को भावनाओं के बारे में पढ़ाना बहुत मूल्यवान हो सकता है। भावनात्मक साक्षरता में स्वयं की भावनाओं के बारे में सचेत होना, उन्हें सम्भालना, असफलताओं से उबरने की प्रेरणा रखना, समानुभूति रखना और संचार एवं संघर्ष समाधान जैसे सामाजिक कौशल विकसित करना शामिल है। सामाजिक-भावनात्मक शिक्षा के तहत विद्यार्थियों को इन सभी पहलुओं के बारे में जानने में मदद करना सम्मिलित होता है।

किसी भी प्रकार के भावनात्मक अधिगम के लिए, आत्म-जागरूक होना मूलभूत आवश्यकता है। हम आत्म-जागरूक होने के बाद ही अपनी भावनाओं को नियंत्रित कर सकते हैं। असफलताओं का सामना करने पर भी निराश न होना, जिसे लचीलापन भी कहा जाता है, ही हमें हताशा, भय और असफलता के बावजूद आगे बढ़ने को प्रेरित करता है। समानुभूति हमारी भावनात्मकता क्षमताओं से लेकर सामाजिक क्षमताओं के बीच का पुल है (ट्रिशिया जोन्स, 2003)। किसी व्यक्ति में समानुभूति की भावना विकसित हो सके, इसके लिए उसे आत्म-जागरूक होने और अपनी भावनाओं से अभिभूत हुए बग़ैर दूसरे व्यक्ति की भावनाओं, ज़रूरतों और मान्यताओं को समझ सकने की क्षमता होना ज़रूरी है। सामाजिक कौशलों में संवाद करने, स्वस्थ सम्बन्ध बनाने और झगड़ों को हल करने में सक्षम होना निहित है।

आत्म-जागरूकता, लचीलापन, समानुभूति और सामाजिक कौशल वे मूलभूत तत्व हैं, जो किसी भी व्यक्ति को, मतभेदों व झगड़ों को रचनात्मक रूप से नियंत्रित करने में सक्षम बनाते हैं।

संघर्ष समाधान

संघर्ष समाधान, किन्हीं दो पक्षों के बीच संघर्ष वाली स्थिति को रचनात्मक रूप से नियंत्रित करने की प्रक्रिया है, ताकि दोनों पक्ष अपने उद्देश्य को हासिल कर सकें और उनके बीच सम्बन्ध बेहतर हो सकें। किसी भी इन्सान के लिए, झगड़ों को नियंत्रित करने की क़ाबिलियत रखना, न केवल वर्तमान के लिए बल्कि उसके भविष्य के लिए भी एक महत्त्वपूर्ण कौशल है। यह एक अधिक सहायक और सुरक्षित समुदाय बनाने में भी मदद करता है और सम्मान एवं सद्भावना के साथ बातचीत करने और निर्णय लेने की अहिंसक पद्धति के उदाहरण को दर्शाता है।

आमतौर पर, संघर्ष समाधान की प्रक्रिया में निम्न चरण शामिल होते हैं :

सबसे पहले, विवाद रखने वाले दोनों व्यक्ति शान्त हो जाते हैं और समस्या को मिलकर हल करने के लिए राज़ी होते हैं। वे एक-दूसरे के लिए अपमानजनक शब्दों का उपयोग नहीं करने या एक-दूसरे को नीचा नहीं दिखाने के लिए सहमत होते हैं और सम्मानपूर्वक संघर्ष समाधान की प्रक्रिया का हिस्सा बनते हैं। फिर, उनमें से प्रत्येक मैं/ मुझे सन्देशों का उपयोग करके अपनी भावनाओं और ज़रूरतों को व्यक्त करता है। (मैं/ मुझे सन्देश का प्रारूप इस प्रकार है : मुझे लगता है ... जब ... क्योंकि ... और मुझे आवश्यकता है...)। अपनी बात को बोलने के साथ-साथ, दूसरे व्यक्ति को बहुत ध्यान से सुनना और फिर दोनों के लिए कारगर समाधानों को खोजने का प्रयास करना और उनमें से सबसे बेहतर समाधान का चुनाव करना भी महत्त्वपूर्ण है।

संघर्ष समाधान और भावनात्मक बुद्धिमत्ता की साझेदारी

संघर्ष समाधान की उपरोक्त प्रक्रिया में उल्लिखित प्रत्येक चरण में साथ-साथ बच्चे द्वारा भावनात्मक जागरूकता, संयम और अभिव्यक्ति दिखाए जाने की आवश्यकता होती है। इन चरणों को समझने के लिए, हम दो विद्यार्थियों अरहान और अर्चना के उदाहरण का उपयोग करेंगे, जो एक गुड़िया के लिए लड़ रहे हैं।

चरण-1 : ग़ुस्सा शान्त करना

शिक्षकों और बच्चों की देखभाल करने वालों ने अनुभव किया होगा कि किसी चिल्लाते हुए, व्याकुल या ग़ुस्से से भरे, चोट खाए बच्चे को शान्त हो जाने के लिए कहना कितना निष्प्रभावी होता है। यहाँ तक कि तनावपूर्ण स्थितियों में, वयस्कों में भी शायद ही कभी अपने दिमाग़ों से, न घबराने, चिन्ता छोड़ने और शान्त बने रहने सम्बन्धित निर्देशों को सुनने की क्षमता होती है। तो वे बच्चों को स्वयं को शान्त रखना या धीरज रखना सीखने में कैसे मदद कर सकते हैं?

शान्त होने की प्रक्रिया में अपनी भावनाओं को पहचानना सीखना (आत्म-जागरूकता) और फिर तुरन्त प्रभाव से अपनी बढ़ती भावनाओं पर क़ाबू पाने के तरीक़े की पहचान करने में सक्षम होना शामिल है। यह भावनात्मक कौशल मस्तिष्क को लड़ाई करने या भाग खड़े होने की स्थिति में जाने से रोकेगा। इस स्थिति में विद्यार्थी रचनात्मक और समालोचनात्मक तरीक़े से समस्या-समाधान के लिए, अपने शान्त दिमाग़ और दिल का उपयोग कर सकते हैं।

अरहान गुड़िया से खेल रहा था तभी अर्चना ने अचानक गुड़िया छीन ली। लेकिन अरहान अपने ग़ुस्से को पहचानने में सक्षम था और उसने अपने सिर पर बने क्रोध के बादल से छुटकारा पाने के लिए अपने शिक्षक द्वारा सिखाई गई गहरी साँस लेने की रणनीति को याद किया। उसने गहरी साँसें लीं और हर साँस के साथ उसने कल्पना की कि क्रोध का बादल उड़ रहा है। ऐसा करने से उसे अपने झगड़े को अधिक प्रभावी ढंग से हल कर पाने के लिए शान्त बने रहने में काफ़ी हद तक मदद मिली।

चरण-2 : अपशब्दों के इस्तेमाल नहीं करना या नीचा नहीं दिखाना

आवेगों को नियंत्रित करने या विलम्बित करने की क्षमता, भावनाओं को सम्भालने का एक भाग है। एक बच्चा जो शान्त हो गया है, वह सामने वाले को अपशब्द बोलने से गुरेज कर सकता है। नियमों का पालन करने या दूसरे व्यक्ति के लिए वास्तविक सम्मान के चलते, अपशब्द बोलने से से बचा जा सकता है। नियमों के पालन के चलते दुखी करने वाले व्यवहार को टालने में जोखिम है और यह तरीक़ा हमेशा सफल हो यह ज़रूरी भी नहीं है, जबकि सच्चा सम्मान सार्थक सम्बन्ध से आता है। यदि विद्यार्थी स्वयं से और अपनी भावनाओं से जुड़ाव महसूस करते हैं, तो वे अपना और दूसरों का सम्मान करते हैं। नियम-आधारित सम्मान की तुलना में समानुभूति के कारण सम्मान, अपशब्दों को रोकने में बेहतर काम कर सकता है।

अरहान ने याद किया कि अर्चना उसकी दोस्त है और इस बहस से पहले, वे कई बार एक साथ खेल चुके थे। इस स्नेह ने अरहान को, अर्चना के लिए ग़ुस्से में उल्टा-सीधा कहने से रोकने में मदद की, हालाँकि अर्चना ने उसकी गुड़िया छीनकर उसके साथ स्पष्ट रूप से ग़लत किया था।

चरण-3 : भावनाओं और ज़रूरतों की अभिव्यक्ति के लिए 'मैं/ मुझे सन्देशों' का उपयोग करना

किसी भी झगड़े या मतभेद की स्थिति में 'मैं/ मुझे सन्देश' का उपयोग करने में सक्षम होने के लिए, विद्यार्थियों को अपनी भावनाओं की पहचान करने में सक्षम होना चाहिए। उनके पास इन भावनाओं को व्यक्त करने के लिए शब्दावली होनी चाहिए और सच्ची भावना व्यक्त करने के लिए उन्हें पर्याप्त रूप से सुरक्षित महसूस करना चाहिए। एक विद्यार्थी की न केवल अपनी सच्ची भावनाओं को व्यक्त करने की और उन्हें पहचानने की बल्कि अपनी आत्म-जागरूकता की क्षमता भी कक्षा के सुरक्षित वातावरण पर निर्भर करती है। इसकी पूरी सम्भावना होती है कि भय से भरे या अपमानजनक माहौल में किसी विद्यार्थी को पता ही नहीं हो कि वह ठीक-ठीक क्या महसूस कर रहा/ रही है। इस प्रक्रिया में, सहायता के लिए शिक्षक एक सुरक्षित कक्षा वातावरण विकसित करने में मदद

कर सकते हैं जहाँ विद्यार्थियों को अपनी भावनाओं को जोड़ने और व्यक्त करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

अरहान के शिक्षक अक्सर स्कूल के बाद सभी विद्यार्थियों के साथ एक गोले में बैठकर दिन भर के क्रियाकलापों पर चिन्तन किया करते थे। सभी की सहमति से, बोलने और सुनने के कुछ बुनियादी नियम तय किए गए थे और उन्हीं के कारण अरहान को यह सीखने में मदद मिली कि अर्चना और किसी अन्य व्यक्ति की भावनाएँ उतनी ही महत्त्वपूर्ण हैं जितनी कि उसकी अपनी। झगड़े के दौरान, सुरक्षा की इस भावना और अपनी भावनाओं से जुड़ाव ने, उसे अर्चना को उस स्थिति के बारे में अपना विचार व्यक्त करने में मदद की।

चरण-4 : दूसरे व्यक्ति की बात ध्यान से सुनना

सुनना कई प्रकार से किया जा सकता है। इनमें 'सचमुच में नहीं सुनना', 'दोष ढूँढ़ने के लिए सुनना' और 'ध्यान से सुनना' शामिल हैं। नहीं सुनना, तब होता है जब झगड़े से लड़ने या भाग जाने वाला भाव पैदा होता है और जब सामने वाला व्यक्ति बोलता है तब हमारा मस्तिष्क क्रोधित और रक्षात्मक विचारों से भरा होता है। जब हम दोष खोजने के लिए सुन रहे होते हैं, तो हम अपने विरोध वाले तर्क को पकड़ लेते हैं और उस पर धावा बोल देते हैं। सावधानीपूर्वक सुनना, विशुद्ध रूप से ध्यान देने से शुरू होता है, खुले दिल और दिमाग़ का सम्मान करते हुए काम करता है और समझ एवं समानुभूति के साथ समाप्त होता है। दूसरों के दृष्टिकोण को आत्मसात करने की क्षमता विकसित होने पर, समानुभूतिपूर्वक सुनना सम्भव हो जाता है और यह रचनात्मकता के लिए तथा रचनात्मक समस्या-समाधान हेतु समालोचनात्मक चिन्तन के लिए एक महत्त्वपूर्ण मूलभूत कौशल है।

अरहान को गहराई से सुनने, व्याख्या करने और संचार के नियमों को स्थापित करने और अभ्यास करने के कक्षा अभ्यासों के माध्यम से प्रामाणिक रूप से सुनने का अभ्यास कराया गया था। इससे उसे, किन्हीं निष्कर्षों पर पहुँचे या उसमें ग़लती ढूँढ़े बिना, अर्चना के पक्ष को ध्यान से सुनने में मदद मिली।

चरण-5 : दोनों पक्षों के लिए कारगर समाधानों की तलाश करना

रचनात्मक समाधान वास्तविक ज़रूरतों पर ध्यान देने से आते हैं, जिसके लिए समानुभूति का होना आवश्यक है। इसके लिए कक्षा में सुरक्षित माहौल की आवश्यकता होती है, क्योंकि पूछताछ और आवश्यकताओं की अभिव्यक्ति हमें असुरक्षित महसूस करा सकती है। रचनात्मक, समालोचनात्मक सोच को प्रोत्साहित करने के लिए सुरक्षा भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। ख़तरा महसूस होने पर, हम अपनी सोच को नीचे ले आते हैं, जिसके चलते असहायता की भावना हावी हो जाती है और हम सम्भावनाओं की तलाश नहीं करते व जोखिम लेने या पुराने विचारों को चुनौती देने में असुरक्षित महसूस करने लगते हैं। वास्तविक सोच, जिसके अन्तर्गत सम्बन्ध बनाना, उच्चकोटि की सोच और रचनात्मकता शामिल होती है, असुरक्षित वातावरण में सम्भव नहीं है।

अर्चना और अरहान की कक्षा के सुरक्षित माहौल ने उन्हें अपने झगड़े को हल करने के तरीक़ों के बारे में शान्तिपूर्वक ढंग से सोचने में सहयोग किया।

चरण-6 : सर्वाधिक उपयुक्त समाधान का चुनाव करना

दोनों पक्षों के लिए कारगर समाधान की खोज करने के लिए, विवाद में शामिल व्यक्तियों को रास्ते में आने वाली, अधीरता, हताशा, निराशा और भय की भावनाओं को नियंत्रित करने की आवश्यकता होती है। प्रेरित रहने के लिए, उन्हें असफलताओं के बावजूद आशा और उम्मीद बनाए रखने की आवश्यकता होती है। सभी के लिए काम करने वाला समाधान खोजने के लिए, दूसरों के प्रति संवेदनशीलता, समस्या-समाधान और प्रभावी संचार जैसे सामाजिक कौशलों की भी आवश्यकता होती है।

अरहान और अर्चना ने, दूसरे बच्चों को झगड़ा करने के बाद सुलह करते देखा था। हालाँकि उन्हें सुलह करने में कुछ समय लगा, आख़िरकार उन्होंने साथ मिलकर गुड़िया के साथ खेलने का फ़ैसला किया, क्योंकि अरहान समझ गया था कि अर्चना बहुत देर से इन्तज़ार कर रही थी और उसने धैर्य खो दिया और गुड़िया छीन ली, क्योंकि वह यह नहीं सोच पाई कि गुड़िया के साथ और किस तरह खेला जा सकता है।

संघर्ष समाधान की शिक्षा की बुनियाद के रूप में एसईएल का उपयोग करना

सामाजिक-भावनात्मक शिक्षा का सहयोग करके संघर्ष समाधान की नींव रखने के लिए स्कूल नीचे लिखीं कुछ चीज़ें कर सकते हैं :

कक्षायी सहमतियाँ बनाना

विद्यार्थियों को आपसी सहयोग से सहमतियाँ करना सिखाया जा सकता और इस कार्य में उनकी मदद भी की जा सकती है। यह सुरक्षा और खुलेपन का वातावरण बनाने में काफ़ी मददगार साबित होगा, क्योंकि ये दोनों स्थितियाँ महत्त्वपूर्ण मुद्दों की निडर अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक हैं और संघर्षों को हल करने की दिशा में काम करती हैं। बहुत कम उम्र से ही आपसी-सहमति से सरल नियम निर्मित किए जा सकते हैं,

जैसे बारी-बारी से चीज़ें करना और जब दूसरे बोल रहे हों तो उन्हें धैर्यपूर्वक सुनना।

कक्षा में बातचीत के लिए कुछ बुनियादी नियम विकसित किए जा सकते हैं। इनके अन्तर्गत किसी भी कार्य में कोई बाधा नहीं डालना, किसी को नीचा नहीं दिखाना या किसी के प्रति राय नहीं बनाना, सम्मान, ईमानदारी, निष्पक्षता रखना, कुछ बहस से परे बातें, जैसे कि अपनी बारी को पास कहकर आगे बढ़ाने (और विचार साझा नहीं करने) का अधिकार और स्वेच्छा से क्षमा करना शामिल हैं। जब विद्यार्थी नियमों को लेकर मिल्कियत महसूस करते हैं, तो वे उनका तत्परता से पालन भी करते हैं।

भावनाओं का शब्दकोश बनाना

भावनाओं की पहचान करने की क्षमता, संघर्ष समाधान के लिए की जाने बातचीत में सहायक सिद्ध होती है। भावनाओं की शब्दावली को खेल-खेल में और रचनात्मक तरीक़ों से सिखाया जा सकता है, जैसे कि कला का उपयोग करना और रंग, गति, रूपक, हावभाव, प्रतीकों या प्रत्यक्ष मौखिक व्याख्याओं के माध्यम से विचारों को व्यक्त करना। यह शब्दावली विद्यार्थियों को आत्म-जागरूकता विकसित करने में मदद करती है, क्योंकि वे इन शब्दों का उपयोग अपने जीवन के बारे में चिन्तन और लिखने में करते हैं। अपने सोच-विचार को साझा करते समय उनमें समानुभूति की भावना भी विकसित होती है।

विद्यार्थियों को ग़ुस्से को नियंत्रित करने के बारे में सिखाया जा सकता है, जैसे ग़ुस्सा बढ़ने के संकेतों की पहचान करना, ग़ुस्से के दिमाग़ पर हावी होने से पहले उसे शान्त करने के लिए रणनीतियों का विकास करना, ग़ुस्सा दिलाने वाली स्थितियों के पैटर्न को समझते हुए ग़ुस्से के विस्फोट को रोकना और यह समझना कि ख़ुद वे ऐसा क्या करते हैं जिससे दूसरे लोगों का ग़ुस्सा भड़क उठता है। वे यह समझ सकते हैं कि डर और शर्म कैसे काम करते हैं और कहानियों, कलाओं व अन्य तरीक़ों का उपयोग करके उन्हें कैसे नियंत्रित किया जा सकता है।

बोलना और सुनना

प्रामाणिक रूप से बात करने और ध्यान से सुनने से कक्षाओं में सुरक्षा का माहौल सुनिश्चित होता है। ध्यान से सुनना सक्रिय रूप से सुनने की एक पूर्व शर्त है और इसमें बिना किसी सवाल, रुकावट या तत्काल प्रतिक्रिया के सुनना शामिल होता है। ध्यान से सुनना, प्रामाणिक रूप से बात करने को प्रोत्साहित करता है, क्योंकि विद्यार्थी क्या कहना चाहते हैं, इसका पता अपने भीतर झाँककर केवल तभी लगा सकते हैं, जब कोई भी उन्हें उकसा न रहा हो, उनसे सवाल न पूछ रहा हो, उन्हें आश्वस्त करने वाली टिप्पणियाँ न दे रहा हो और उनका मार्गदर्शन न कर रहा हो आदि।

इस प्रक्रिया का अभ्यास, पहले दो-दो के समूह बनाकर और फिर गोले में बैठकर एक साझेदारी का समूह बनाकर किया जा सकता है। कक्षा समुदाय के निर्माण के लिए गोला बनाकर एक-दूसरे की बात सुनना यानी लिसनिंग सर्कल एक शक्तिशाली संसाधन हो सकता है।

निष्कर्ष

बहुत कम उम्र से ही विद्यार्थियों को, जागरूक होने और अपनी भावनाओं को सम्भालने, असफलताओं के बावजूद प्रेरित रहने, दूसरों के लिए समानुभूति विकसित करने और सामाजिक व संचार कौशल विकसित करने में मदद की जा सकती है। यह सब कई तरह से किया जा सकता है - एक-दूसरे के साथ संवाद और बातचीत करने के तरीक़े के बारे में सामूहिक रूप से कक्षा सहमतियाँ बनाने के लिए विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करके; कला, संगीत, क़िताबों और प्रतीकों के माध्यम से भावनाओं की शब्दावली बनाने में उनकी मदद करके; और प्रामाणिक बोलने व ध्यान से सुनने को प्रोत्साहित कर, संचार कौशल और समानुभूति के निर्माण के माध्यम से। इस भावनात्मक और सामाजिक शिक्षा में न केवल आन्तरिक मूल्य समाहित होते है बल्कि यह रचनात्मक संघर्ष समाधान के लिए एक महत्त्वपूर्ण आधार भी है।

References

Tricia Jones and Randy Compton. *Kids Working It Out - Strategies and Stories for Making Peace in Our Schools*. San Francisco: Jossey-Bass, 2003

अनुजा वेंकटरमन अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलूरु में संवाद, बन्धुत्व एवं न्याय के लिए बने एक हित समूह (इंटरेस्ट ग्रुप ऑन डायलॉग, फ्रेटरनिटी एंड जस्टिस) से जुड़ी एक रिसर्च एसोसिएट हैं। अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय से शिक्षा में स्नातकोत्तर करने से पहले, उन्होंने कई वर्षों तक बेंगलूरु के कुछ वैकल्पिक स्कूलों में विभिन्न उम्र के बच्चों के साथ काम किया है। उनसे *anuja.venkataraman@apu.edu.in* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : यशोधरा कनेरिया **पुनरीक्षण :** भरत त्रिपाठी **कॉपी एडिटर :** अनुज उपाध्याय

बच्चों की कहानियों में बच्चों की आवाज़

ज्योति देशमुख और शिवानी तनेजा

हम मानते हैं कि स्कूल एक ऐसा संस्थान है जो बच्चों की ख़ुशहाली को सुनिश्चित करता है, लेकिन स्कूल के भीतर के और स्कूल से जुड़े सभी फ़ैसले वयस्कों द्वारा लिए जाते हैं। कई बार तो, कोई स्कूल किस तरह काम करता है इसके लिए वे वयस्क ज़िम्मेदार होते हैं जो बच्चों के जीवन की वास्तविकताएँ तक नहीं जानते। वयस्क बच्चों से ज़्यादा जानते हैं, इस मान्यता को जाँचने की ज़रूरत है। इस लेख में यह पता लगाने की कोशिश की गई है कि कैसे बच्चों को कहानी की क़िताबों के ज़रिए उनकी स्कूली जीवन की समझ को साझा करने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है और साथ ही इस लेख में बाल साहित्य में बच्चों की एजेंसी बढ़ाने की भी हिमायत की गई है।

'*स्कूल में सीखा और सिखाया*' (मुस्कान, 2022) भोपाल की गंगा नगर नामक शहरी झुग्गी बस्ती की एक गोण्ड जनजाति की लड़की निकिता धुर्वे द्वारा लिखी गई एक कहानी है। कहानी अपने दोस्तों के साथ उसके स्कूल जाने की उत्सुकता से शुरू होती है, जो कि जल्द ही उनके कक्षा अनुभवों से निराशा में तब्दील हो जाती है। वे स्कूल के काम करने के तौर-तरीक़ों में ख़ुद को खोया हुआ महसूस करते हैं। शिक्षक उनकी घरेलू भाषा, गोण्डी से इतर भाषा में बोलते हैं और ऐसे में जब वे कुछ समझना चाहते हैं तो उस पर ध्यान नहीं दिया जाता है। बच्चे हार मानकर औपचारिक शिक्षा के अपने सपने को छोड़ना नहीं चाहते, इसलिए वे इस परिस्थिति से बाहर निकलने के रास्ते तलाशना शुरू करते हैं। इस चर्चा के ज़रिए, यह कम उम्र की लेखिका शिक्षणशास्त्र पर उपयुक्त प्रश्न उठाती है।

कक्षा में कहानी

हमारे स्कूल में, कक्षा-5 में पढ़ रहे 10 से 15 वर्ष के आयु वर्ग के 20 बच्चों के एक मिश्रित समूह में इस क़िताब को प्रस्तुत किया गया। यह काफ़ी जादुई लग रहा था कि कैसे इतनी आसानी से बच्चे इस कहानी की परिस्थितियों से जुड़ाव महसूस कर रहे थे। कहानी में दो-तीन वाक्य गोण्डी में हैं और जब उन्हें पढ़ा गया, तो बच्चों के अनुरोधों की झड़ी लग गई। "फिर से पढ़िए न!", "यह अभी क्या कहा गया?", उन्होंने पूछा। बातचीत के बहाव और कुछ जाने-पहचाने शब्दों के आधार पर, वे अटकलें लगाने की कोशिशें कर रहे थे कि आख़िर क्या कहा जा रहा है। कक्षा में कोई गोण्डी बच्चे नहीं थे, पर उन बच्चों के गोण्डी बोलने वाले दोस्त ज़रूर थे। एक सुगमकर्ता होने के नाते, यह भाँपा जा सकता था कि यह उत्सुकता केवल इसलिए नहीं थी कि यह एक ऐसी भाषा थी जिससे वे थोड़े-बहुत अवगत थे, बल्कि इस उत्सुकता का अधिक लेना-देना तो कहानी की जड़ से था। हिमाचल प्रदेश में बच्चों की एक टोली के साथ इसी कहानी को पढ़ने पर रागिनी ललित ने भी यह पाया कि पहाड़ी बच्चे भी निकिता और उसके दोस्तों के साथ तुरन्त जुड़ाव महसूस करने लगे थे।[i]

अनुभव साझा करना

कहानी सुनाने के बाद, कुछ प्रेरक प्रश्नों के ज़रिए बच्चों को उनके अनुभव साझा करने में सहयोग दिया गया, जैसे "उन चार लड़कियों के बारे में तुम क्या सोचते हो?", "क्या तुमने कभी स्कूल में खोया-सा महसूस किया है?", "तुम क्या करोगे यदि तुम गुम हुए से महसूस करो?", "क्या तुमने कभी किसी वयस्क से उनके काम करने के तरीक़े में बदलाव लाने के लिए कहा है?" बच्चे अपने-अपने दृष्टिकोण साझा करने के लिए उत्साहित थे और हमें उनसे आग्रह करना पड़ रहा था कि वे दूसरों की कहानियाँ भी सुनें। ये कहानियाँ मौखिक रूप से साझा की गईं और कुछ बच्चों ने अपनी कहानियाँ लिखीं भी। तीन प्रकार की कहानियाँ उभरीं।

स्कूल के अनुभव

एक 10 वर्षीय लड़के ने साझा किया कि उसके गाँव के स्कूल में, शिक्षक कुछ बोर्ड पर लिखते और बच्चों से उसकी नक़ल करने को कहते; यदि बच्चे लिख न पाते या ग़लतियाँ करते, तो उन्हें 'पेड़ से टूटी ताज़ी हरी डण्डी' से पीटा जाता। "हम कमरे से बाहर निकलने के बहाने ही सोचते रहते। मुझे स्कूल जाने का मन ही नहीं करता था, पर परिवार के सदस्य जाने के लिए हम पर दबाव डालते।" ऐसा ही एक अनुभव 11 वर्ष की एक लड़की ने भी साझा किया, जिसने लिखा कि, "सर हमें याद करने के लिए कहते, पर मैं वह कर ही नहीं पाती। मैं सचमुच कोशिश करती पर नहीं कर पाती। तो वे जब हमें छड़ी से मारते, तो मैं बहुत दुखी हो जाती।" एक अन्य लड़की ने भी लिखा, "सर हमें घूरा करते, ऊपर से नीचे तक अपनी नज़रें दौड़ाया करते।" वह यह बात अपनी माँ को नहीं बता पाई पर इतना ज़रूर बताया कि ये शिक्षक उन्हें ठीक से नहीं पढ़ाते। उसकी माँ ने उससे पढ़ाई छोड़ देने के लिए कहा।

14 वर्ष की एक लड़की ने, जिसने अपनी शिक्षा यात्रा केवल एक साल पहले शुरू की थी, स्कूल का हिस्सा बनने के अपने पहले के प्रयास के बारे में लिखा। "जब हम पहली बार स्कूल गए थे, हम वहाँ केवल तीन दिनों के लिए थे। हम वहाँ पढ़ नहीं पाते थे। शुरुआत में, हमने सोचा कि ऐसा इसलिए है क्योंकि वह एक नई जगह है। मैं आशा करती कि वहाँ का आदमी (शिक्षक) हमें मारेगा नहीं। मेरी दोस्त ने मुझे आश्वासन दिलाया कि वह नहीं मारेगा और कहा कि हमें बैठकर अपनी क़िताब खोल लेनी चाहिए। पर वह एक ख़ाली नोटबुक थी। शिक्षक ने बड़े-बड़े वाक्यों से बोर्ड भर दिया। मुझे पढ़ना नहीं आता था, पर शिक्षक ने कहा कि वे अन्य कुछ नहीं सिखाएँगे।" तो, मेरी दोस्त ने कहा, "हम किसी और स्कूल में पढ़ लेंगे।" शिक्षक को मानो परवाह ही नहीं थी और उन्होंने बस यह कहा, "हाँ, जाओ।"

सुगमकर्ता होने के नाते, हमने स्कूल से जुड़े कुछ सकारात्मक अनुभव प्राप्त करने की कोशिश की, पर ऐसा एक भी अनुभव नहीं था।

उनकी भाषा और बाहरी दुनिया से जुड़े अनुभव

एक 18 वर्ष की किशोरी ने साझा किया कि जब वह अपने दोस्तों के साथ अपनी भाषा (पारधी) में बात करती, तो अन्य बच्चों को लगता कि वे उनके बारे में बात कर रहे हैं और शिक्षक से शिकायत कर देते। "लंच के समय, वे बच्चे हमसे दूर बैठा करते और यह कहकर हमसे दूरी बना लिया करते कि हम पारधी हैं।" ऐसा ही एक अनुभव कंजर समुदाय की एक बच्ची ने भी साझा किया था। उसने लिखा, "जब मैं पहले स्कूल जाया करती थी, तो मेरे स्कूल के बच्चे हमारा और हमारी भाषा का मज़ाक उड़ाया करते थे। अगर कोई उनका मज़ाक उड़ाए, तो उन्हें कैसा महसूस होगा? किसी को भी हमें इसलिए ताना नहीं मारना चाहिए कि हम एक अलग भाषा बोलते हैं।"

वयस्कों के सामने अपने विचार रखने के अनुभव

14 वर्ष की एक लड़की ने साझा किया कि कई बार उसकी माँ उसे भीख माँगने के लिए भेजा करतीं, जो उसे बिलकुल पसन्द नहीं था। उसकी माँ उस पर तब भी ग़ुस्सा करतीं जब वह कचरा बीनने नहीं जाती। वह अपनी माँ से बहुत डरती थी (और अब भी डरती है) और उनसे कह नहीं पाती थी कि वह भीख माँगने नहीं जाना चाहती। पर एक दिन, उसने साहस जुटाया और अपनी माँ से कह दिया। उसकी माँ ने उसे भीख माँगने भेजना बन्द कर दिया और स्कूल में उसका दाख़िला करवा दिया।

इस लेख की एक लेखिका ने भी अपने स्कूली जीवन का एक निजी अनुभव साझा किया, "जब मैं कक्षा-10 में थी, तो गणित के शिक्षक, तिवारी सर, हमेशा मुझे बोर्ड के पास बुलाते और सवाल समझाए बिना ही मुझे हल करने के लिए निर्देश देते। जब मैं नहीं कर पाती, तब वे मेरी चोटी खींचते। ऐसा कई दिनों तक चलता रहा। मुझे उनसे डर लगा था और मैं उनकी कक्षा से बचना चाहती थी। एक दिन, जब वे कक्षा ख़त्म कर जाने लगे, मैं साहस जुटाकर उनके पीछे दौड़ी। मैंने दो-टूक उनसे पूछा कि वे मेरे साथ ऐसा क्यों करते हैं। सर ने शान्ति से जवाब दिया कि वे चाहते थे कि मैं बेहतर करूँ। मैं नहीं जानती थी जवाब में क्या कहूँ। पर उन्होंने उसके बाद से मेरी चोटी खींचना बन्द कर दिया। मेरा उनसे डरने का सिलसिला भी बन्द हो गया।"

बच्चों की अभिव्यक्ति ने साफ़तौर पर निम्नलिखित बातों की ओर इशारा किया :

1. बच्चे भेदभाव को पहचानते हैं। भले ही वे यह भेद या विश्लेषण नहीं कर पाते हों कि यह उनकी भाषा के कारण हो रहा है या जाति के कारण या किसी अन्य कारणवश, लेकिन छोटा महसूस करवाए जाने का अनुभव एक ऐसा अनुभव है जिसे हाशियाकृत समुदायों के कई बच्चे लगातार दुनिया से हासिल करते रहते हैं, वह भी बहुत ही सरलता से प्रभावित होने वाली उम्र में। बड़े होते-होते, इसका उनके व्यक्तित्व पर गहरा और दीर्घकालिक असर पड़ सकता है।

   बच्चों के नकारात्मक अनुभव उनके मन में परतों के रूप में जम जाते हैं। उन्हें पीटे जाने के विवरण उनके मन में छाप छोड़ चुके हैं और इसका बयान उनकी अभिव्यक्ति में साफ़-साफ़ नज़र आता है। कई दफ़ा, बच्चे ऐसी बारीक़ियाँ साझा करते हैं, जैसे वहाँ कौन-कौन था और अन्य पहलू जो कहने को तो उन अनुभवों से सम्बद्ध नहीं होते, पर बच्चे की यादों में अहम भूमिका निभाते हैं। सम्भव है कि उन्हें लगता हो कि ऐसी स्पष्टता उनकी अभिव्यक्ति को अधिक वास्तविक और विश्वसनीय बनाती है या फिर बात महज़ इतनी हो कि वे घटना को उसकी बारीक़ियों से अलग न कर पा रहे हों। बच्चों के लिए इस प्रकार की अभिव्यक्तियों का एक चिकित्सकीय महत्त्व होता है, तब जब कोई वयस्क उनकी अभिव्यक्ति पर, उनके एहसास और उनकी आपबीती को मान्यता दे।

2. जब कक्षा में एक सामूहिक प्रकिया के ज़रिए ऐसे अनुभव साझा किए जाते हैं, तो हर बच्चे को एहसास होता है कि ऐसा केवल 'मेरे साथ' नहीं हुआ। जब बच्चे बहुत छोटे होते हैं, तब भी वे समीक्षात्मक ढंग से इस 'डेटा' (अनुभवों का एक समूह) का विश्लेषण कर पाते हैं कि यह समाज के काम करने का हिस्सा है और यह 'मेरी' ग़लती नहीं है। यह एक ऐसी शिक्षा के लिए ज़रूरी है जो सामाजिक न्याय के मूल्यों पर आधारित हो।

3. हमारी संस्कृति में, यह तथ्य कि एक बच्चा और एक वयस्क (शिक्षक, अभिभावक या संरक्षक/ बड़े के रूप में कोई भी अन्य व्यक्ति) अलग-अलग तरीक़े से सोच सकते हैं कि जो एक बच्चा सोचता है वह भी मूल्यवान है, मान्य नहीं है। इसलिए, ऐसी चर्चाएँ कक्षाओं में नहीं हुआ करतीं।
4. भले ही बच्चे आहत होने या किसी ऐसे के प्रति ग़ुस्सा होने, जिसे उन्होंने 'उनके ख़िलाफ़ होने' की श्रेणी में रखा है, के अनुभव साझा कर पाए; उनमें से अधिकांश के लिए यह आसान नहीं था कि वे उनके 'संरक्षक' को एक ऐसी परिस्थिति में देखें जहाँ वे उसे चुनौती दे रहे हैं। सम्भवतः एक तर्क है जो बच्चे के मन में काम करता है और उनके लिए इस व्यक्ति को मद्देनज़र रखे बग़ैर 'आत्म' की अवधारणा बनाना कठिन है।

यह स्पष्ट है कि *स्कूल में 'सीखा और सिखाया'* जैसी कहानी का उपयोग अलग-अलग सामाजिक-आर्थिक समूहों के विद्यार्थियों के बीच बातचीत के कई दरवाज़े खोलने के लिए किया जा सकता है। भागीदारों को स्कूली जीवन के एक या कई पहलुओं से परेशानी हो सकती है, जैसे कि शिक्षक का व्यवहार, सीखने में कठिनाइयाँ, सहपाठियों के साथ मिलना-जुलना, हिंसा और शोषण। ऐसी चर्चाएँ स्कूल के लिए भी चिन्तन के मौक़े लाती हैं।

उपरोक्त बातचीत साफ़-साफ़ सुझाती है कि स्कूली व्यवस्था को बच्चों के अनुसार ढलने की ज़रूरत है, न कि इसके उलट। अंजलि नरोन्हा भी इस कहानी की समीक्षा में, उपरोक्त अनुभवों को अधिकांश बच्चों के लिए सार्वभौमिक पाती हैं।[ii]

कहानियों में बच्चों की एजेंसी

जैसा कि ऊपर देखा गया, कहानियाँ हमें सुरक्षित वातावरण में बातचीत शुरू करने की आज़ादी देती हैं। उन्हें बहुत निजी होने की ज़रूरत नहीं, लेकिन उन्हें वह डेटा या प्रकरण प्रदान करना चाहिए जहाँ से हम चिन्तन और विमर्श करना शुरू कर सकें। और इसके लिए, हमें ऐसी क़िताबों की ज़रूरत है जहाँ बच्चा केन्द्र में हो; न सिर्फ़ एक क़िरदार के रूप में पर अपने पूरे व्यक्तित्व के साथ, जिससे कि ऐसी कहानियाँ भी उभर सकें जहाँ बच्चे का दुनिया को देखने का नज़रिया वयस्कों के नज़रियों से भिन्न हो या बच्चों के किसी समूह के बीच अलग-अलग नज़रिए हों।

स्कूल में 'सीखा और सिखाया' कहानी का एक ख़ास पहलू यह है कि इस कहानी में बच्चों को कई स्तरों पर एक आवाज़ दी गई है। पहला, यह कहानी एक बच्चे द्वारा लिखी गई है; दूसरा, बच्चे कैसा महसूस कर रहे हैं, वह कहानी में निकलकर आया है; और आख़िर में, बच्चे सामूहिक तौर पर एक योजना बना रहे हैं और उसे अमल में ला रहे हैं। शिक्षक वह एक व्यक्ति है जो बच्चों का दृष्टिकोण समझता और स्वीकारता है, जिससे कि कहानी को समाधान का बोध और एक सुखान्त मिलता है। पर ऐसा ज़रूरी नहीं कि जीवन में भी हमेशा ऐसा होता हो। इसलिए, यह अधिक ज़रूरी है कि बच्चों की एजेंसी स्पष्टता से स्थापित की जाए।

एजेंसी को बण्डूरा (2017)[iii] द्वारा कुछ यूँ परिभाषित किया गया है, "अपने क्रियाकलापों से जानबूझकर कुछ प्रभाव उत्पन्न करना"; मेथिस (2016)[iv] के अनुसार, "यहाँ एजेंसी से आशय है अपनी पहचान और नज़रियों को ज़ाहिर करना और अन्यों द्वारा सक्रिय रूप से संज्ञान लिए जाने लायक बनाना, ताकि अपने जीवन के निजी, सांस्कृतिक और सामाजिक पहलुओं को बेहतर और सशक्त किया जा सके।" मेथिस साथ ही जोड़ते हैं कि लेखकों और चित्रकारों के पास ऐसी परिस्थितियों और क़िरदारों का निर्माण करने की शक्ति है जिनसे बच्चों की एजेंसी को अधिक समृद्ध बनाया जा सकता है। जिस कहानी पर चर्चा की जा रही है वह अपने शब्दों के ज़रिए, एक हाशियाकृत समुदाय के बच्चे की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और आकांक्षाओं को प्रस्तुत करती है और वहीं कहानी के चित्र हमें कहानी के नायक के जीवन के हालातों का सन्दर्भ प्रदान करते हैं।

हमारे आस-पास ऐसा बहुत सारा बाल-साहित्य है जो स्कूल के विषय को छूता है। हालाँकि, अधिकांश कहानियों की क़िताबें बच्चों के मुख्यधारा की व्यवस्था से जुड़ने के इर्द-गिर्द ही घूमती रहती हैं, इस उद्देश्य से कि पहली बार स्कूल जाते बच्चे को स्कूल या उससे मिलती-जुलती व्यवस्था के लिए तैयार किया जा सके। केवल मुट्ठीभर क़िताबें ही ऐसी हैं जहाँ स्कूली वातावरण में बच्चे की एजेंसी को दर्शाया गया है। प्रथम बुक्स द्वारा इस थीम पर प्रकाशित की गई कई क़िताबों में से, शबनम मिनवाला द्वारा लिखित, द राइट वे स्कूल (2020), एक बच्चे के प्राकृतिक व्यक्तित्व को स्थान प्रदान करने के लिए अलग दिखाई पड़ती है, अब चाहे यह व्यक्तित्व जिज्ञासु प्रवृत्ति का हो या जिस तरह वह बच्ची दिखती या कपड़े पहनती हो। विद्रोह की छपछप (मुस्कान, 2020) ऐसी ही एक अन्य क़िताब है जहाँ लेखक रिनचिन शिक्षक को एक ऐसे व्यक्ति के तौर पर दर्शाती हैं जो बच्चों के साथ बहुत दोस्ताना हैं और जिसकी बाल-केन्द्रित शिक्षापद्धति उसे विद्यार्थियों की मित्र बना देती है, लेकिन कहानी मोड़ लेती है जब यह ज़ाहिर होता है कि वह वयस्क के रूप में अपने पद के तौर पर काम कर रही हैं। यदि वह सच में बच्चों को अपनाना चाहती हैं, तो एक आन्तरिक रूपान्तरण की ज़रूरत होगी।

अधिकांश क़िताबें वयस्कों द्वारा लिखी जाती हैं, जहाँ एक वयस्क की आँखों से (या उसके बचपन की यादों से) किसी बच्चे का नज़रिया क़िताब की कथावस्तु तय करता है। लेकिन अगर हम बच्चों और युवा लोगों को उनकी कहानियों की

क़िताबों के लेखक होने के लिए प्रेरित करें, तो यह बच्चों के लिए एक ऐसा स्थान बनाने की शुरुआत होगी जहाँ वे जो सोचते और महसूस करते हैं, वह सब साझा कर सकते हैं और जहाँ बच्चों के नज़रियों का सम्मान किया जा सकता है।

बच्चों की आवाज़ों को स्थान देने वाली कहानियों के स्कूल में प्रवेश करने पर क्या स्कूली प्रक्रियाओं पर चर्चाएँ शुरू करने और सवाल उठाने की कोई सम्भावना है? थॉमसन और जॉनसन (2007)[v] ज़ोर देते हैं कि शिक्षकों को भी बच्चों की एजेंसी को स्वीकारना होगा, उन्हें 'बेहद सृजनात्मक और बहुत अन्तर्दृष्टि व ज्ञान रखने वाले' व्यक्तियों के तौर पर देखना होगा। जब वयस्क, निकिता की कहानी के शिक्षक की तरह, बच्चों को सुनने के लिए तैयार होते हैं, अपनी कमज़ोरियों को स्वीकारते हैं और इस बात को पहचानते हैं कि कैसे हमारे व्यवहार और तरीक़े बच्चों को अलग और दूर कर देते हैं, तब सम्भवतः हम स्कूल को सभी बच्चों के लिए एक सुरक्षित और ख़ुशहाल जगह बनाने के लिए पहला क़दम लेंगे।

Endnotes

i Lalit, R. (2022) The Cultivation of Safe Spaces Within Schools. Available at: https://feminisminindia.com/2022/01/21/the-cultivation-of-safe-spaces-within-schools/

ii The Book Review, November 2022, Pg. 62

iii Bandura A (2017) Toward a psychology of human agency: pathways and reflections. Perspectives on Psychological Science, 13(2):130–136

iv Janelle B. Mathis (2016) Literature and the Young Child: Engagement, Enactment, and Agency from a Sociocultural Perspective, Journal of Research in Childhood Education, Volume 30, 2016 - Issue 4

v Quoted in Reflecting on childhood and child agency in history: Haring, U. et al. (2019) Palgrave Communications | https://doi.org/10.1057/s41599-019-0259-0

ज्योति देशमुख पिछले नौ सालों से मुस्कान,भोपाल में एक कक्षा सुगमकर्ता के तौर पर काम कर रही हैं। उन्हें बच्चों को पढ़ाने में मज़ा आता है और वे हमेशा कक्षा को सभी के लिए सक्रिय और मज़ेदार बनाने के नए-नए तरीक़े खोजती रहती हैं। उनसे *jdeshmukh025@gmail.com* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

शिवानी तनेजा पिछले 25 सालों से भोपाल और उसके इर्द-गिर्द विमुक्त जनजातीय पृष्ठभूमि के और ग़रीब समुदायों के लोगों के बीच काम कर रही हैं। वे मानती हैं कि शिक्षा को एक पृथक अकादमिक घटना के तौर पर नहीं देखा जा सकता और शिक्षाविद होने के नाते, हमें बच्चे की ख़ुशहाली और बुनियादी सशक्तिकरण को एक शैक्षणिक सफर के केन्द्रीय तत्व के तौर पर देखने की ज़रूरत है। उनकी यह सोच उनके सरोकारों और काम की प्राथमिकताओं में भी प्रतिबिम्बित होती है, जैसे कि बच्चों की सामूहिक एजेंसी, कठिन बचपन के बीच मानसिक स्वास्थ्य और सामाजिक न्याय का निर्माण करना। दिल से एक शिक्षक होने के नाते वे प्रतिदिन मुस्कान में किसी कक्षा का हिस्सा होने का लुत्फ़ उठाती हैं और शैक्षणिक कोशिशों के जवाब में विद्यार्थियों की प्रतिक्रियाओं का अवलोकन कर सीखती रहती हैं। उनसे *shivani@muskaan.org* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : अतुल वाधवानी **पुनरीक्षण :** भरत त्रिपाठी **कॉपी एडिटर :** अनुज उपाध्याय

प्रोजेक्ट कार्य के माध्यम से सामाजिक-भावनात्मक शिक्षा

चिक्कावीरेश एस वी

बच्चों का सीखना उनकी भावनाओं से जुड़ा होता है। हम इन दोनों चीज़ों को अलग करके नहीं देख सकते। बच्चे तभी प्रभावी और स्थायी ढंग से सीख सकते हैं जब सीखना उनकी भावनाओं से जुड़ा हो। क़रीब दो सालों से कोविड-19 महामारी के कारण स्कूलों के बन्द होने से न सिर्फ़ बच्चों की स्कूली शिक्षा में बल्कि उनके सामाजिक और भावनात्मक विकास में भी रुकावट पैदा हुई है। इसलिए बच्चों के सीखने की प्रक्रिया के सामाजिक और भावनात्मक आयामों पर ज़ोर देना पहले की तुलना में अब कहीं ज़्यादा ज़रूरी हो गया है। सीखने के इस पहलू को गतिविधियों और कक्षा प्रक्रिया का हिस्सा बनना चाहिए।

बच्चों की सामाजिक और भावनात्मक ज़रूरतों को सीखने की अवधारणाओं और नतीजों के साथ जोड़ा जाना चाहिए। इसे बढ़ावा देने के लिए कई शैक्षणिक तरीक़े अपनाए जा सकते हैं। इनमें ख़ास हैं - खेल, नाटक, कला, समूह गतिविधि, सहमति-असहमति की गुंजाइश वाली गतिविधियाँ, ज़ोर से पढ़ना, सक्रिय रूप से सुनना, खुली चर्चा और स्वतंत्र लेखन। इस तरह की गतिविधियों से बच्चों का सर्वांगीण विकास होता है। यहाँ मैं इस तरह की एक कोशिश के अपने अनुभव और इससे बनी समझ को साझा करने जा रहा हूँ। इसके बाद मेरे द्वारा बच्चों को सौंपे गए प्रोजेक्ट में शामिल प्रक्रियाओं और उन तरीक़ों के बारे में बताया गया है जिनसे इस प्रॉजेक्ट ने बच्चों की सामाजिक और भावनात्मक ज़रूरतों को पूरा करने में मदद की।

योजना मेले का अनुभव

हमने एक 'योजना मेले' पर विचार किया। शुरुआत में हमने शिक्षकों के साथ उन प्रोजेक्टों पर चर्चा की जिनके लिए बच्चे ख़ुद से जानकारी या आँकड़े जुटा सकते थे। जो विषय हमारे पास आए, उनमें से हमने गाँवों में पानी के स्रोतों का विषय चुनने का फ़ैसला किया। इस विषय को हमने इसलिए चुना क्योंकि जीवन को बनाए रखने के अलावा, पानी सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक क्षेत्रों में भी महत्त्व रखता है। बच्चों को अपने गाँव में इस विषय से जुड़ी जानकारी जुटानी थी।

हमने कक्षा 5-6 और 7 के 30 विद्यार्थियों के साथ प्रोजेक्ट की शुरुआत एक अनूठे तरीक़े से की। हमने उन्हें राजस्थान में पानी की कमी से सम्बन्धित एक डॉक्यूमेंट्री *वॉटर वाइव्ज़* का प्रदर्शन किया। इसके प्रदर्शन के पहले पानी की कमी की भयावहता और जल संरक्षण के महत्त्व पर चर्चा की गई थी।

बच्चों से कहा गया कि वे अपने गाँवों में पानी के स्रोतों की पहचान करें। ये बच्चे जम्बालादिन्नी, हिरेहुनाकुंती और तारीवाला नाम के तीन अलग-अलग गाँवों से थे और उनके अनुभव भी अलग-अलग थे। फिर हमने बच्चों को 10 समूहों में बाँट दिया और हर एक समूह को एक प्रोजेक्ट दिया। प्रोजेक्ट कार्य के विषय इस तरह थे :

1. जम्बालादिन्नी के विद्यार्थियों को : 20 साल पहले आपके गाँव में मौजूद जल स्रोत।
2. हिरेहुनाकुंती के विद्यार्थियों को : 20 साल पहले आपके गाँव में मौजूद जल स्रोत।
3. तारीवाला के विद्यार्थियों को : 20 साल पहले आपके गाँव में मौजूद जल स्रोत।
4. इन तीन गाँवों में पानी के मौजूदा स्रोत।
5. आपके गाँव में पानी का दुरुपयोग।
6. एक दिन, एक महीने और एक साल के दरमियान एक परिवार द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले पेयजल की मात्रा; पानी बचाने के सम्भावित तरीक़े और बचाई जा सकने वाली मात्रा।
7. पानी के मुद्दे पर अख़बारों में प्रकाशित लेख और उनमें व्यक्त विचार।
8. शौचालय और उनमें पानी का इस्तेमाल।
9. कृषि और सिंचाई में पानी का इस्तेमाल।
10. आपके गाँव में वर्षा जल संचयन के लिए उठाए गए क़दम।

पानी के मुद्दों से हुए इस परिचय के एक महीने के भीतर बच्चों ने अपने माता-पिता, बुज़ुर्गों, गाँव के नेताओं और ग्राम पंचायत के सदस्यों के साथ चर्चाओं के आधार पर अपनी रिपोर्टें तैयार कीं। हमने इन रिपोर्टों पर अलग-अलग कक्षाओं के बच्चों के विभिन्न समूहों के साथ कई बार चर्चा की और उन्हें अपनी रिपोर्टों को और बेहतर बनाने के लिए सुझाव दिए। बच्चों ने जानकारी इकट्ठी करने और रिपोर्टों पर चर्चा करने में काफ़ी उत्साह दिखाया।

मेले का दिन तय किया गया और सभी विद्यार्थियों द्वारा समूह रिपोर्ट प्रस्तुत करने का कार्यक्रम तय कर दिया गया। इसमें ग्रामीणों को भी बुलाया गया था। इस बार विद्यार्थियों का एक साथ इकट्ठा होना कई कारणों से हर बार से थोड़ा अलग था। बैठक में साझा की गई जानकारी को विद्यार्थियों ने ख़ुद जुटाया था। उनका ज्ञान उनके अपने अनुभव का एक हिस्सा था। इसलिए उनके प्रस्तुतीकरण और चर्चा के दौरान उनमें एक आत्मविश्वास नज़र आ रहा था। अन्य बातों के अलावा, बच्चों ने जल संरक्षण की समस्याओं पर चर्चा की और इस महत्त्वपूर्ण संसाधन के समुचित उपयोग के लिए अहम सुझाव दिए। बच्चों से इस तरह की बातें सुनकर गाँव वाले भी खुश और प्रभावित हुए क्योंकि बहुत-सी बातें वे ख़ुद भी नहीं जानते थे। बातचीत को और सार्थक बनाने के लिए उन्होंने भी अपने विचार सामने रखे।

बच्चों को यह प्रोजेक्ट देते समय हमें थोड़ी हिचकिचाहट हुई थी। इस तरह के काम को करने में उनकी क्षमता को लेकर हमें थोड़ी शंका थी। लेकिन जिस उत्साह के साथ उन्होंने जानकारी और आँकड़ों को इकट्ठा किया और अपने विचार प्रस्तुत किए, उससे हमें उन पर गर्व महसूस हुआ। इस अनुभव ने हमें सिखाया कि विद्यार्थी जो सीखते हैं उसमें उन्हें शामिल करना कितना प्रभावी होता है, साथ ही हमने अपने शिक्षण में सीखने के विद्यार्थी-केन्द्रित तरीक़ों को शामिल करने के महत्त्व को भी जाना। जो शिक्षक इस प्रोजेक्ट में विद्यार्थियों की भागीदारी देख चुके थे, वे अब विद्यार्थियों से सक्रिय भागीदारी पाने के लिए सिखाने की इस पद्धति को अहमियत दे रहे हैं।

इस लेख को लिखने से ठीक पहले, मैंने विद्यार्थियों से बातचीत की और यह जानने की कोशिश की कि उन्होंने प्रोजेक्ट से क्या सीखा। मुझे यह जानकर हैरानी हुई कि विद्यार्थी सीखी हुई बातों को कई महीनों के बाद भी भूले नहीं थे। जब उनसे पूछा गया कि उन्हें ब्यौरे इतनी अच्छी तरह कैसे याद रहे तो उनका जवाब था, "जो हमने ख़ुद किया था, उसे हम कैसे भूल सकते हैं सर?" विद्यार्थियों के अनुभव, शिक्षकों की प्रतिक्रियाओं और इस प्रोजेक्ट से मिली समझ ने मुझे यह निष्कर्ष निकालने के लिए प्रेरित किया कि बच्चों की सामाजिक और भावनात्मक शिक्षा को आसान बनाने के लिए प्रोजेक्ट-आधारित पद्धति एक बेहतरीन साधन हो सकती है।

योजना मेले में सामाजिक-भावनात्मक शिक्षा के लिए गुंजाइश

विद्यार्थियों की बैठकें

प्रोजेक्ट कार्य सौंपने, ज़िम्मेदारियों को बाँटने और इकट्ठा किए गए आँकड़ों और जानकारी पर चर्चा करने के लिए विद्यार्थियों की बैठकें अक्सर आयोजित की जाती थीं। इन बैठकों से विद्यार्थियों को बिना किसी हिचकिचाहट के अपने विचार खुलकर व्यक्त करने के लिए एक मंच मिला और नतीजतन उन्हें दूसरों के द्वारा सही या ग़लत ठहराए जाने के डर से छुटकारा मिला। इससे उन्हें ख़ुद को अभिव्यक्त करने, अगुआई करने, निर्णय लेने, आत्मविश्वास जगाने, समस्याओं के हल खोजने और किसी उद्देश्य के लिए प्रतिबद्ध होने की क्षमताएँ विकसित करने में मदद मिली।

सामूहिक कार्य

बच्चे पाँच से छह के समूह में काम करते थे। हर एक समूह में सीखने की अलग-अलग क्षमताओं वाले बच्चे थे, लेकिन उन्होंने सहयोग, भागीदारी और ज़िम्मेदारी की भावना से काम किया। यह ऐसा मंच था जहाँ वे एक-दूसरे से सीखने के सिद्धान्त का अभ्यास कर सकते थे। कक्षा-7 के बच्चों ने कक्षा-5 और 6 के विद्यार्थियों का मार्गदर्शन किया। जूनियर विद्यार्थियों को अपने सीनियरों के साथ बातचीत करने में मज़ा आया। अपनी 'कक्षाओं के अवरोधों' को पार करते हुए, अन्य कक्षाओं के विद्यार्थियों के साथ घुलना-मिलना और सीखना सभी के लिए बहुत बढ़िया अनुभव रहा। वे समूहों में काम करने और अपने समूह को सफल होते हुए देखने के लिए उत्साहित थे। उनका उत्साह मेरी स्मृति में आज भी दर्ज है।

स्वतंत्र लेखन

बच्चों को यह लिखने के लिए प्रोत्साहित किया गया कि उन्होंने दूसरों के साथ क्या चर्चा की और ख़ुद क्या देखा। इससे उन्हें ख़ुद को, यानी अपने विचारों, भावनाओं और समझ को व्यक्त करने का मौक़ा मिला और उनके लिए यह ख़ुद को सहज बनाने और समृद्ध करने वाला अनुभव था।

ज़ोर से पढ़ना

बच्चों ने जो बातें अपने समूहों में और दूसरे समूहों के साथ बैठकों में लिखी थीं, उन्हें ज़ोर से पढ़ने के लिए कहा गया। इससे उन्हें न केवल आत्मविश्वास से पढ़ने का मौक़ा मिला बल्कि दूसरों को सुनने और संवेदनशील होकर दूसरों के विचारों, भावनाओं और नज़रियों को समझने का मौक़ा भी मिला।

समुदाय के साथ सहभागिता

पानी से जुड़े मुद्दों (लोगों के पास क्या सुविधाएँ हैं और वे किन समस्याओं का सामना करते हैं, आदि) को लेकर समुदाय के अनुभव के बारे में जानकारी इकट्ठा करने के लिए समुदाय के साथ की गई बातचीत ने बच्चों को जल संकट के मुद्दे के प्रति संवेदनशील बनाया और उनके भीतर उनके आस-पास की दुनिया के बारे में जागरूकता विकसित करने में मदद की। समुदाय के सदस्यों के साथ बातचीत करने से बच्चों को

उनके साथ सामाजिक सम्बन्ध विकसित करने में मदद मिली। उन्होंने सक्रिय रूप से सुनने, सहयोग और परस्पर मदद करने की अहमियत को भी महसूस किया।

काम को समय पर पूरा करने के लिए सराहना

दिए गए कामों को पूरा करने के लिए बच्चों को एक समय सीमा दी गई और उन्हें समय पर पूरा करने के लिए उनकी सराहना भी की गई। उन्हें अपने प्रदर्शन का विश्लेषण करने और सुधार के बारे में सोचने के लिए कहा गया। फिर उन्हें धीरे-धीरे ज़्यादा जटिल काम दिए गए और उनको पूरा करने में उन्हें मार्गदर्शन, प्रोत्साहन और सहयोग दिया गया। लक्ष्य तय करने, अपने प्रदर्शन में सुधार करने और फिर ज़्यादा बड़ा लक्ष्य तय करने की उपलब्धि से उन्हें आत्मविश्वास और स्थिरता मिली। ख़ुद को मिली सराहना से वे और बेहतर करने के लिए प्रेरित हुए।

प्रस्तुतीकरण के कौशल

प्रोजेक्ट पूरा करने के बाद उनसे कहा गया कि वे अपनी पूरी की गई गतिविधि पर पोस्टर तैयार करें और दर्शकों के सामने प्रदर्शित करें। दर्शकों के सवालों को ध्यान से सुनने, उनका धैर्य के साथ जवाब देने और सही आलोचना को स्वीकार करने से उनके प्रस्तुतीकरण के कौशलों में और ज़्यादा निखार आया।

पानी और मानवीय मूल्य

जैसा कि पहले भी बताया गया, पानी से जुड़े अलग-अलग पहलुओं पर चर्चाएँ हुईं, जैसे इसके स्रोत, उपयोग और दुरुपयोग; एक दिन, महीने और साल में किसी घर और गाँव में इस्तेमाल किए जाने वाले पानी की मात्रा; शौचालयों में इस्तेमाल किया जाने वाला पानी; और जल संरक्षण की सम्भावनाएँ। इन चर्चाओं के ज़रिए बच्चों को जीवन के लिए पानी के महत्त्व को लेकर जागरूक बनने और पानी से जुड़े मानवीय मूल्यों की सराहना करने में मदद मिली। कई मुद्दों को लेकर उनकी समझ में सुधार हुआ, जो इस प्रकार हैं :

- सभी जीवित प्राणियों के बीच सम्बन्ध और पानी पर उनकी निर्भरता।
- साफ़-सफ़ाई और स्वच्छता के बारे में सीखने की ज़रूरत।
- पानी से सम्बन्धित स्वच्छता, जल स्रोतों और जल वितरण प्रणालियों के बारे में जागरूकता का महत्त्व।
- जल वितरण का लोकतंत्रीकरण करना ताकि सभी वर्गों के लोग समान रूप से पानी का इस्तेमाल कर सकें और पानी के स्रोतों के इस्तेमाल में विशेषाधिकार की व्यवस्थाओं को ख़त्म किया जा सके।
- जल संसाधनों का सही उपयोग करना और उनके दुरुपयोग को रोकना।
- प्रकृति का संरक्षण, उसके प्रति सम्मान और पानी के सम्बन्ध में सही और ग़लत आचरण।
- पानी को लेकर समझदारी भरा और वैध आचरण, जैसे पानी की सुविधा का क़ानूनी रूप से इस्तेमाल करना और पानी के बिलों के भुगतान की सामाजिक ज़िम्मेदारी का सम्मान करना।

पीछे मुड़कर देखने पर

जब मैं पीछे मुड़कर देखता हूँ तो मुझे एहसास होता है कि

चित्र-1 : पानी से जुड़े मुद्दों के बारे में दादी से जानकारी लेता एक विद्यार्थी।

पूरे प्रोजेक्ट में मेरी भूमिका कितनी कम थी। मेरा काम केवल कुछ प्रश्नों को तैयार करना था, जिसके आधार पर विद्यार्थी ख़ुद पानी के स्रोतों और पानी से जुड़े अन्य मुद्दों पर आधारित इस प्रोजेक्ट पर आगे बढ़े, अहम जानकारी जुटाई और अपने निष्कर्ष सामने रखे। उन्होंने सवाल पूछने, जवाबों को इकट्ठा करने, जानकारी का विश्लेषण करने और अपने सीखे हुए को दर्शकों-श्रोताओं के सामने रखने का कौशल सीखा। विद्यार्थियों की बैठकों और समूह कार्य में उनकी भागीदारी, स्वतंत्र लेखन की कोशिशें, ज़ोर से पढ़ना, समुदाय के साथ बातचीत और समय सीमाओं को पूरा करना सीखना, सब कुछ तारीफ़ के क़ाबिल था। प्रस्तुतीकरण और निर्णय लेने की कला सीखने के अलावा उन्होंने आत्म-जागरूकता और सामाजिक सम्बन्धों की भावना भी विकसित की। उन्होंने सोचना, अन्वेषण करना, अनुमान लगाना और विवेचना करना सीखा। इस तरह कहा

चित्र-2 : योजना मेले के दौरान विद्यार्थियों द्वारा प्रोजेक्ट का प्रस्तुतीकरण।

जा सकता है कि उनका परिचय उन कौशलों से हुआ जिन्हें सीखने के उच्च-क्रम के कौशल माना जाता है।

उनकी गतिविधियों में अंकगणित और भाषा कौशल, पर्यावरण जागरूकता शामिल थी; उनके सीखने का एक भावनात्मक और सामाजिक आयाम था और सबसे बढ़कर, इसमें पानी और पर्यावरण जागरूकता के महत्त्व पर केन्द्रित मानवीय मूल्यों की भावना भी शामिल थी। कक्षा बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए एक आदर्श जगह बन गई। इस वजह से, मैं इस सामूहिक विद्यार्थी-केन्द्रित प्रोजेक्ट कार्य को इस बात का एक बड़ा उदाहरण मानता हूँ कि एक सुविचारित प्रोजेक्ट किस तरह विद्यार्थियों को सीखने के अलग-अलग पहलुओं में शामिल कर सकता है।

चिक्कावीरेश एस वी इंजीनियरिंग स्नातक हैं और आजकल कर्नाटक के बागलकोट ज़िले में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन में गणित और विज्ञान के लिए रिसोर्स पर्सन के रूप में कार्यरत हैं। उन्होंने स्कूलों में गणित सीखने में सुधार करने के लिए संसाधन निर्मित करने में 'कालिका चेतरिके' रिसोर्स टीम के साथ काम किया है। उन्हें पढ़ना, लिखना और स्कूली शिक्षकों के पेशेवर विकास के लिए काम करना पसन्द है। उनसे *chikkaveeresha.v@azimpremjifoundation.org* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : अमेय कान्त **पुनरीक्षण :** भरत त्रिपाठी **कॉपी एडिटर :** अनुज उपाध्याय

लैंगिक असमानता से समानता तक की ओर | 'सद्भावना विद्यालय'

दीप्ति सिंह राठौर

लैंगिक असमानता का अर्थ है समाज में महिलाओं और पुरुषों के बीच व्याप्त असमानताएँ। यह विभाजन प्राचीन समय से चला आ रहा है और अभी 21वीं सदी में भी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, वैज्ञानिक, मनोरंजन और खेल जैसे क्षेत्रों में मौजूद है। महिलाओं के ख़िलाफ़ भेदभाव जेंडर के आधार पर किए जाने वाले कामों और व्यवहारों का एक महत्त्वपूर्ण परिणाम है। इस वजह से आज भी कन्या भ्रूण हत्या के मामले सामने आते रहते हैं। कई कारणों से आज भी सैकड़ों लड़कियों को स्कूल जाने की इज़ाज़त नहीं मिलती। हालाँकि पिछले कई सालों में बहुत कुछ बदल गया है और महिलाएँ कई अलग-अलग पेशों में योगदान दे रही हैं, लेकिन समाज का काफ़ी बड़ा हिस्सा अभी भी इस असन्तुलन से प्रभावित है। नतीजतन, समाज में अब भी हमारे रोज़मर्रा के व्यवहारों में लैंगिक असमानता मौजूद है, लेकिन यह हमें परेशान नहीं करती है। इन व्यवहारों को जल्द-से-जल्द बदलना चाहिए; तभी हम संवैधानिक रूप से दिए गए मौलिक अधिकारों के वास्तविक महत्त्व को देख पाएँगे और सच्ची समानता की ओर बढ़ पाएँगे।

लैंगिक असमानता कई छोटे-छोटे कार्यों और व्यवहारों का परिणाम है। कई स्कूल दावा करते हैं कि वे सभी विद्यार्थियों के साथ समान व्यवहार करते हैं और लैंगिक भेदभाव नहीं करते हैं। लेकिन अपने 12 साल के शिक्षण करियर के दौरान, मैंने स्कूली स्तर पर मौजूद लैंगिक असमानताओं को देखा और अनुभव किया है।

एक दिन, मुझे एक विद्यार्थी का फ़ोन आया। वह चाहती थी कि मैं उसे हिन्दी के कुछ सवाल समझाऊँ। कॉल के बीच में, उसने कहा कि उसे फ़ोन रखना होगा क्योंकि उसका भाई काम से लौट आया है और उसे भाई को खाना देना होगा। इससे मेरे मन में सवाल उठा कि क्या आधुनिक समाज में भी लड़कियों को सिर्फ़ घरेलू कामों के लिए ही उपयुक्त माना जाता है। अगर घर में बहन है और भाई बाहर से आए तो माँ की ग़ैर-मौजूदगी में बहन को ही भोजन परोसना चाहिए? और केवल माँएँ और बहनें ही भोजन क्यों परोसें? बचपन से ही लड़कों और लड़कियों को घर के अलग-अलग काम सौंपे जाते हैं।

हमारी भाषा, चित्रों और कहानियों में भी घरेलू कामों को जेंडर के आधार पर बाँटा गया होता है। इस अन्तर को बढ़ावा देने में स्कूल भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह दृढ़ विश्वास कि घर का काम लड़कियों और महिलाओं की ज़िम्मेदारी है और घर के बाहर के काम की ज़िम्मेदारी लड़कों और पुरुषों की है, तभी बदलना शुरू होगा जब हम गहन चर्चाएँ करेंगे और स्कूल के कामों में लड़कों और लड़कियों दोनों की भागीदारी सुनिश्चित करेंगे।

जब कक्षा में लड़कों और लड़कियों से उनके सपनों के बारे में पूछा जाता है, तो लड़के बड़े होकर सेना या पुलिस बल में भर्ती होने या डॉक्टर बनने की इच्छा व्यक्त करते हैं। जबकि, अधिकांश लड़कियाँ शिक्षण के करियर को चुनती हैं या सवाल करती हैं कि उन्हें अपनी पढ़ाई क्यों जारी रखनी चाहिए जबकि आगे चलकर उन्हें सिर्फ़ घरेलू काम ही करने हैं।

जब भी मैं अपने विद्यार्थियों से उनके पेशों के बारे में पूछती हूँ, तो ज़्यादातर लड़कियाँ इसी तरह के जवाब देती हैं। यह हमें सोचने पर मजबूर करता है कि भले ही आज महिलाएँ पुरुषों के साथ काम करने के लिए बाहर जाती हैं, पर सामाजिक तौर-तरीक़ों के कारण कुछ ही पेशे महिलाओं के लिए उपयुक्त माने जाते हैं, जिनमें से एक शिक्षण का पेशा है। मैं ख़ुद एक शिक्षक हूँ। परिवार में या दूसरों से बातचीत के दौरान जब भी मैं ज़िक्र करती हूँ कि मैं एक शिक्षक हूँ, तो सभी मेरी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि महिलाओं के लिए पढ़ाना सबसे अच्छा काम है क्योंकि इस काम में समय निश्चित होने की वजह से वे नौकरी के साथ-साथ अपने परिवारों को भी समय दे पाती हैं। समाज ने पहले ही तय कर लिया है कि महिलाओं को किस तरह के काम करना चाहिए, यही वजह है कि लड़कियाँ इन पेशों से आगे नहीं सोच पाती हैं।

यहाँ स्कूलों में लैंगिक भेदभाव को बढ़ावा देने वाले व्यवहारों के कुछ उदाहरण दिए गए हैं :

- लैंगिक असमानता को बढ़ावा देने वाली भाषा का इस्तेमाल करना। जैसे कोई लड़का रोता है, तो उसे यह कहकर चुप करा दिया जाता है कि "लड़की की तरह क्यों रो रहे हो?" ऐसे कई लड़के होते हैं, जो स्वभाव से शर्मीले होते हैं और उन्हें सौंपे गए कुछ कामों को करने में कठिनाई

होती है। उनका भी यह कहकर मज़ाक उड़ाया जाता है कि "लड़कियों की तरह क्यों शरमा रहे हो?"

- प्राथमिक विद्यालय (प्राइमरी स्कूल) से ही कक्षा में लड़के और लड़कियों के बैठने की अलग-अलग व्यवस्था की जाती है। कम उम्र में व्यवहार में अन्तर बहुत अधिक दिखाई नहीं देता है, लेकिन जब तक वे उच्च प्राथमिक कक्षाओं (अपर प्राइमरी) तक पहुँचते हैं, ऐसा अन्तर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।
- सुबह की सभा में भी लड़कों और लड़कियों के लिए अलग-अलग लाइनें होती हैं।
- लाइनों में खड़े किए जाने पर लड़कियाँ हमेशा आगे और लड़के उनके पीछे खड़े होते हैं।
- पारम्परिक रूप से, लड़कियाँ सुबह की सभा का नेतृत्व करती हैं।
- लड़कियों के लिए कला, गायन, रंगोली और सजावट जैसी गतिविधियाँ होती हैं, जबकि भाषण, वाद-विवाद और कविता पाठ के लिए लड़कों को प्राथमिकता दी जाती है।
- सांस्कृतिक कार्यक्रमों में लड़कियों की अधिक भागीदारी होती है।
- लड़के दौड़, क्रिकेट और फुटबॉल जैसे खेलों में भाग लेते हैं, जबकि लड़कियों के लिए कैरम, लूडो, खो-खो, कबड्डी और बैडमिंटन जैसे खेलों का आयोजन किया जाता है।
- कक्षा और ब्लैकबोर्ड की सफ़ाई और लड़कियों को शान्त रखने जैसे काम लड़कियों को सौंपे जाते हैं, जबकि लड़कों को पूरी कक्षा को शान्त रखने, पानी की बाल्टी उठाने, टेबल-बेन्च को इधर-उधर खिसकाने या हटाने आदि की ज़िम्मेदारी सौंपी जाती है।

जब मैंने शासकीय माध्यमिक विद्यालय, बनारी में आना शुरू किया, तो मुझे ऐसी बहुत-सी बातें पता चलीं, जो जाने-अनजाने लैंगिक असमानता को बढ़ावा देने में योगदान दे रही हैं। थोड़े से सोच-विचार के साथ स्कूल में लैंगिक असमानता को दूर करने की कोशिशें की जा सकती हैं। मैं एक शिक्षक हूँ इसलिए यह मेरा कर्तव्य है कि शिक्षण को लेकर मेरा तरीक़ा ऐसा हो कि मैं असमानता की इस खाई को पाटने में अपनी भूमिका निभा सकूँ।

- हमने, पूरे स्टाफ़ के साथ मिलकर, इस रूढ़िवादिता को दूर करने के लिए कुछ छोटी कोशिशें की हैं, कि कुछ खेल सिर्फ़ लड़कियों के लिए होते हैं या कुछ सिर्फ़ लड़कों के लिए। हमने लड़कियों को लड़कों के साथ क्रिकेट और फुटबॉल खेलने का मौक़ा दिया।
- मध्यान्ह भोजन में एक साथ बैठकर खाने की व्यवस्था की गई और लड़कों को भी भोजन परोसने के काम में शामिल किया गया।
- हमने स्कूल के पीछे ख़ाली जगह में एक बग़ीचा लगाने का फ़ैसला किया। वह जगह बहुत गन्दी थी - खरपतवार और कचरे से भरी हुई। तो सभी शिक्षकों और बच्चों ने मिलकर इसकी सफ़ाई की। सफ़ाई के इस काम में महिला और पुरुष शिक्षकों ने बराबर ज़िम्मेदारी ली। बच्चे भी इससे प्रेरित हुए और लड़के और लड़कियों दोनों ने बराबरी से सक्रिय रूप से इसमें भाग लिया।
- मैंने देखा कि सांस्कृतिक कार्यक्रमों में सिर्फ़ लड़कियाँ ही डांस में भाग लेती थीं। मैंने लड़कों को भी डांस में शामिल करने की कोशिश शुरू की। मुझे पता चला कि वे डांस करने में शर्माते थे क्योंकि उन्हें कभी भी डांस में भाग लेने के लिए नहीं कहा गया था। मैंने बच्चों से बात की और उन्हें समझाया कि वे डांस को सिर्फ़ एक कला के रूप में देखें और सबको अपना हुनर दिखाएँ। इसके बाद, लड़कों ने भी डांस कार्यक्रमों में भाग लेना शुरू कर दिया। कुछ लड़कों ने मुझसे कहा कि अगर मैं उनके स्कूल नहीं आई होती तो उन्हें कभी डांस में हिस्सा लेने का मौक़ा ही नहीं मिलता।
- कक्षा में भी, मैंने लैंगिक असमानता को दूर करने के लिए कुछ फेरबदल किए हैं :
  - लड़कों और लड़कियों के लिए कक्षा में बैठने की लोकतांत्रिक व्यवस्था।
  - सहपाठियों के साथ (peer-to-peer) व समूह में सीखने (group learning) के दौरान, गतिविधियों के लिए लड़कों और लड़कियों के जोड़े या समूह बनाना।
  - भाषा पढ़ाते समय रोल-प्ले आदि में लड़के और लड़कियों, दोनों को शामिल करना।
  - लड़के और लड़कियों, दोनों को कक्षा की सफ़ाई की ज़िम्मेदारी देना।
  - विज्ञान के मॉडल बनाने में लड़कियों को शामिल करना।
  - यह सुनिश्चित करना कि स्कूल सभा के कार्यक्रमों में लड़के और लड़कियाँ दोनों समान रूप से भाग लें।

- उनके साथ इस बारे में बात करना कि लड़की और लड़का होने का क्या मतलब है; कामों के सन्दर्भ में उनके विचारों को बाँटना और मेरे नज़रिए को साझा करना; लड़कों से घर के कामों में अपनी माँओं की मदद करने के लिए कहना।

दीप्ति सिंह राठौर शासकीय माध्यमिक विद्यालय, बनारी (ज़िला जांजगीर, छत्तीसगढ़) में पढ़ाती हैं। कला में स्नातक होने के साथ ही उन्होंने बीएड की डिग्री भी हासिल की है। उनके पास क़ानून की डिग्री भी है। पढ़ाना उनका जुनून है। विद्यार्थियों के साथ बातचीत करना व उन्हें समझना और पढ़ाना उनका शौक़ बन गया है। इसके अलावा, उन्हें गाना, डांस करना और पेंटिंग करना पसन्द है। उनसे *dipti.rathore87@gmail.com* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : सीमा **पुनरीक्षण :** भरत त्रिपाठी **कॉपी एडिटर :** अनुज उपाध्याय

सामाजिक-भावनात्मक शिक्षा को केन्द्र में रखना | अज़ीम प्रेमजी स्कूल कलबुर्गी

फ़रज़ाना बेगम

सामाजिक-भावनात्मक बुद्धिमत्ता बच्चों में अन्तर्निहित होती है। सामाजिक-भावनात्मक बुद्धिमत्ता की क्षमता हमें स्वयं को व्यक्त करने, दूसरों को समझने, बदलाव स्वीकार करने और हर दैनिक ज़रूरतों, चुनौतियों और दबावों का सामना करने के लिए तैयार करती है। स्कूलों में सामाजिक-भावनात्मक बुद्धिमत्ता से परिचय बच्चों के नैतिक मूल्यों पर दीर्घकालिक प्रभाव डालता है, साथ-ही-साथ उनकी शैक्षणिक प्रगति को भी बेहतर करता है।

पालकों के लिए लचीले और सामाजिक व भावनात्मक रूप से समझदार बच्चों का पालन करना चुनौतीपूर्ण है। सामाजिक-भावनात्मक कौशल को विकसित करने के लिहाज़ से जन्म से पाँच वर्ष तक का समय बच्चे के मस्तिष्क के लिए अहम होता है। बच्चे की आजीवन प्रगति और सफलता काफ़ी हद तक इस अवधि के दौरान बच्चे को मिले व्यवहार (या गुण) (जेनेटिक) और पालन-पोषण (देखभाल, पोषण, प्रेरणा, माहौल और शिक्षण) पर निर्भर करती है। स्कूल को, जहाँ बच्चा अपने प्रारम्भिक जीवन के लगभग 15 वर्ष बिताता है, बच्चे के सामाजिक और भावनात्मक विकास के लिए पर्याप्त समर्थन और अवसर देना चाहिए।

सामाजिक-भावनात्मक शिक्षा में कई पहलू शामिल होते हैं जैसे आत्मभान (मैं कौन हूँ?), आत्म प्रबन्धन (मुझे क्या करना चाहिए? कैसे करना चाहिए?), ज़िम्मेदार निर्णय (क्या सही है? क्या ग़लत है? क्या अच्छा है या क्या बुरा है?), सामाजिक जागरूकता (स्वयं की पहचान, दूसरों की पहचान), सम्बन्ध कौशल (देखभाल, मान, सहानुभूति और समानुभूति)। इन पहलुओं में दक्षता विद्यार्थियों को नैतिक और तर्कसंगत बनाती है। इसलिए स्कूल में शिक्षक को प्रत्येक बच्चे को

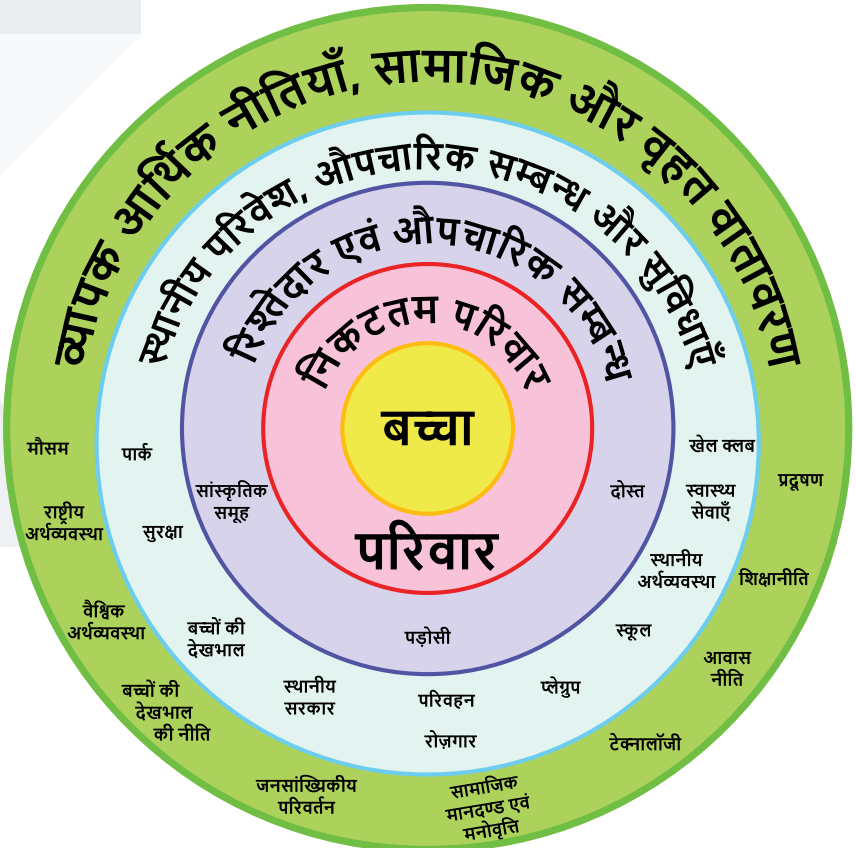

चित्र-1 : ब्रोफेनब्रेनर (1979) के पारिस्थितिकी मॉडल के आधार पर जोएल गिब्स (Joel Gibbs) का बनाया चित्र।

समझने के लिए और उनकी मदद करने के लिए मिलकर काम करना होगा। यहाँ कुछ अन्य हितधारक भी होते हैं जो इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जैसा कि युरी ब्रोफेनब्रेनर (Urie Bronfenbrenner) ने पारिस्थितिकी मॉडल में उल्लेख किया है।

स्कूल एक छोटा समाज होता है। हमारे स्कूल में, हम शिक्षक सामाजिक-भावनात्मक शिक्षा और विकास को प्रोत्साहित करने के लिए बच्चों की दिनचर्या में विभिन्न गतिविधियाँ शामिल करते हैं। एक कक्षा में बच्चे शिकायत करते हैं, रोते हैं, चिढ़ाते हैं, लड़ते हैं और एक-दूसरे को परेशान करते हैं। सामाजिक-भावनात्मक शिक्षा उन्हें अपनी भावनाओं को पहचानने और प्रबन्धित करने में मदद करती है। शिक्षक के रूप में हम उन्हें सकारात्मक लक्ष्य प्राप्त करने में मदद करते हैं जो सहानुभूति रखने, दूसरों के साथ अच्छे सम्बन्ध बनाने और ज़िम्मेदार निर्णय लेने के महत्त्वपूर्ण सामाजिक-भावनात्मक मूल्य पर आधारित होते हैं।

हम उनके अनुभवों, घटनाओं और जीवन के ख़ास मौक़ों को साझा करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। सिर्फ़ महान व्यक्तियों

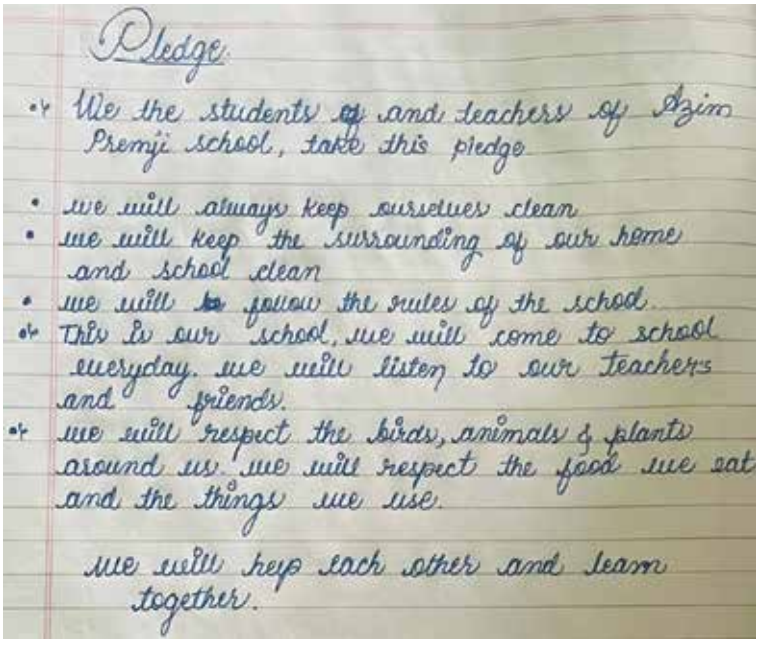

चित्र-2: शिक्षक और विद्यार्थी सुबह एक साथ प्रतिज्ञा लेते हुए कि हम अपने आसपास के हर व्यक्ति और वस्तु का सम्मान करेंगे।

की कहानियाँ पढ़ने-सुनने की बजाय हम अपने जीवन की कहानियाँ साझा करते हैं। हम बच्चों के लिए सुरक्षित और महफ़ूज़ माहौल बनाकर उन्हें देखभाल और शारीरिक और भावनात्मक सहजता देने की कोशिश करते हैं ताकि वे अपने विचारों और मतों को व्यक्त कर पाएँ और उनकी मुश्किलों और परेशानियों को साझा कर पाएँ। हम प्रत्येक विद्यार्थी की ज़रूरत और स्थिति के आधार पर उनसे संवाद करते हैं। हम स्कूल परिसर में धर्मनिरपेक्षता का अभ्यास करते हैं, सभी के साथ समान व्यवहार करते हैं और सभी को समान अवसर देते हैं।

हम अज़ीम प्रेमजी स्कूल के विद्यार्थी और शिक्षक यह प्रतिज्ञा लेते हैं —

- *हम ख़ुद को हमेशा साफ़-सुथरा रखेंगे।*
- *हम अपने घर और स्कूल के आस-पास साफ़-सफ़ाई रखेंगे।*

चित्र-3 : कक्षा में प्रवेश के वक्त विद्यार्थियों का ख़ुशी-ख़ुशी स्वागत करती शिक्षिका।

- *हम स्कूल के नियमों का पालन करेंगे।*
- *यह स्कूल हमारा है, हम रोज़ स्कूल जाएँगे। हम अपने शिक्षकों और दोस्तों की बात सुनेंगे।*
- *हम अपने आस-पास के पक्षियों, जानवरों और पौधों का आदर करेंगे। हम अपने भोजन और उपयोग की जाने वाली चीज़ों का आदर करेंगे।*
- *हम एक-दूसरे की मदद करेंगे और साथ मिलकर सीखेंगे।*

स्व-भान और सामाजिक जागरूकता

आनन्दमय माहौल बनाने के लिए शिक्षक विद्यार्थियों के साथ मज़ेदार गतिविधियों जैसे नृत्य (डांस), एक्शन प्ले में शामिल होते हैं। हम विद्यार्थियों से गले लगकर, हाई-फाईव्स देकर या अभिवादन के किसी ऐसे तरीक़े से मिलते हैं जो उन्होंने दिए गए विकल्पों में से चुना था। हम यह समझने की कोशिश करते हैं कि उनका दिन कैसा बीत रहा है, वे कैसा महसूस कर रहे हैं और कुछ भावनाओं को वे क्यों महसूस कर रहे हैं आदि। बच्चों को आत्मबोध और आत्मप्रेरणा की ओर उन्मुख करने के लिए उनके टेस्ट लिए जाते हैं। टेस्ट के बाद उनके हल किए हुए पेपर उन्हें वापस दे दिए जाते हैं ताकि वे देख सकें कि उनका प्रदर्शन कैसा रहा, वे और क्या कर सकते थे, उन्हें क्या बेहतर करने की ज़रूरत है। यह उन्हें उनकी अगली परीक्षाओं के लिए लक्ष्य निर्धारित करने में मदद करता है।

स्व-प्रबन्धन

भावनाओं के प्रबन्धन का मतलब भावनाओं को दबाना नहीं है, यह स्वस्थ भावनात्मक स्वास्थ्य का संकेत है। कक्षा-2 की एक लड़की की बोतल खो गई थी। वह ज़ोर-ज़ोर से रो रही थी। यह उसके ख़ुद को अभिव्यक्त करने का वह तरीक़ा था जो उसने सीखा था। अब इस स्थिति से निपटने की ज़िम्मेदारी शिक्षक की थी। ऐसी स्थिति में, शिक्षक को बच्चे की भावनाओं को नियंत्रित करने और समस्या का समाधान खोजने में मदद करनी चाहिए। इस मामले में, शिक्षिका ने सबसे पहले बच्ची का रोना बन्द कराने में मदद की। फिर बोतल की तलाश शुरू की और बोतल ढूँढ़ निकाली। ऐसा करते हुए, शिक्षिका ने उस बच्ची को और अपनी कक्षा के बाक़ी सभी बच्चों के सामने यह उदाहरण प्रस्तुत किया कि जब कोई समस्या आए तो रोने की बजाय यह सोचना चाहिए कि उस समस्या का समाधान कैसे किया जाए।

ज़िम्मेदारी की भावना

कक्षा-6 और 7 के विद्यार्थियों ने अपने शिक्षक की मदद के बिना विभिन्न गतिविधियों और कार्यक्रमों के संचालन में सहयोगी और सहकारी रूप से काम करना सीखा। 5 सितम्बर यानी शिक्षक दिवस के अवसर पर विद्यार्थियों ने शिक्षकों के

लिए एक सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन किया था। जब उन्हें मालूम चला कि सभी नियोजित कार्यक्रम करने के लिए पर्याप्त समय नहीं बचा है तो वे घबराए नहीं बल्कि उन्होंने कुछ गतिविधियाँ हटाकर स्थिति को समझदारी से सम्भाला और कार्यक्रम को समय पर समाप्त किया। यह समय के साथ उनके अभ्यास और सहभागिता के द्वारा उनमें विकसित हुई परिपक्वता और धीरता का संकेत था।

विद्यार्थी नेतृत्व वाली समितियाँ, जिनमें चर्चा और मीटिंग भी होती हैं और विद्यार्थी अपने विचार, मत और आईडिया व्यक्त करते हैं, विद्यार्थियों में अपनेपन की भावना और जुड़ाव पैदा करने के अलावा ज़िम्मेदारी की भावना को भी बढ़ावा देती हैं। यह विशिष्ट रूप से आशावादी शाला संस्कृति विकसित करने के लिए महत्त्वपूर्ण है, जहाँ विद्यार्थी अपनी महत्ता समझते हैं और सम्मानित महसूस करते हैं।

ज़िम्मेदार निर्णय लेना

स्कूल में विभिन्न समितियाँ और समूह हैं। इन्हें जोशीला और जीवन्त बनाने लिए विद्यार्थियों को सुझाव देने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। जैसे अरविन्द नाम का लड़का है जो फ़ाउंडेशनल लिटरेसी एंड न्यूमैरेसी (FLN) समूह में है, वह गणित में काफ़ी अच्छा प्रदर्शन करता है लेकिन अँग्रेज़ी विषय में उसका प्रदर्शन उतना अच्छा नहीं था। जब उसके अँग्रेज़ी में कम अंक आए तो उसकी अँग्रेज़ी शिक्षक ने उसे टेस्ट पेपर पर क्लास टीचर के हस्ताक्षर करवाने के लिए कहा। क्लास टीचर ने उसके साथ बातचीत की कि वह अँग्रेज़ी में भी कैसे अच्छा प्रदर्शन कर सकता है। बच्चों के साथ खुलकर बात करना भी उन्हें समझने और ज़िम्मेदार निर्णय लेने में मदद करता है। उस बच्चे ने शिक्षक की बात को सकारात्मक रूप से लिया और अब वह अँग्रेज़ी कक्षा में अच्छे से भागीदारी कर रहा है।

निष्कर्ष

हमारे स्कूल में हम एक सुरक्षित और डर मुक्त माहौल बनाते हैं। जो विद्यार्थियों और शिक्षकों को एक-दूसरे के साथ और अन्य सहयोग-कर्मियों के साथ सहज रूप से संवाद करने में सक्षम बनाता है। हम एक साथ खेलते हैं, अपनी ख़ुशी और ग़म एक-दूसरे के साथ बाँटते हैं, अपनी भावनाओं को व्यक्त करते हैं और एक-दूसरे का साथ देते हैं।

यह ध्यान रखना महत्त्वपूर्ण है कि सामाजिक-भावनात्मक शिक्षा सिर्फ़ विद्यार्थियों के जीवन को सफल और सन्तोषप्रद बनाने के लिए महत्त्वपूर्ण नहीं है, बल्कि यह उनकी शैक्षणिक सफलता के लिए ज़रूरी है। सीखने के एक सकारात्मक और सहयोगी माहौल का बढ़ावा देकर और आवश्यक संसाधन और सहयोग देकर हमारा स्कूल यह सुनिश्चित करने का प्रयास कर रहा है कि विद्यार्थियों में ऐसे सामाजिक-भावनात्मक कौशल विकसित हों जो सफल जीवन के लिए ज़रूरी हैं।

*बच्चों की पहचान सुरक्षित रखने के लिए उनके नाम बदल दिए गए हैं।

Endnotes

i Housing Children: South Auckland, The Housing Pathways Longitudinal Study - Scientific Figure on ResearchGate. https://www.researchgate.net/figure/Bronfenbrenners-ecological-model-Diagram-by-Joel-Gibbs-based-on-Bronfenbrenners-1979_fig1_311843438

फ़रज़ाना बेगम कलबुर्गी, कर्नाटक के अज़ीम प्रेमजी स्कूल में प्राथमिक स्कूल शिक्षक हैं। यहाँ आने से पहले वे केन्द्रीय विद्यालय, कलबुर्गी में कार्यरत थीं। उन्हें प्राथमिक कक्षाओं में ईवीएस, अँग्रेज़ी और गणित विषय पढ़ाने का अनुभव है। उन्होंने विजयपुरा की कर्नाटक स्टेट यूनिवर्सिटी से विज्ञान (PCM) में स्नातक की डिग्री हासिल की है। किताबें पढ़ने और आउटडोर गेम खेलने में उनकी रुचि है। उनसे *farzana.begum@azimpremjifoundation.org* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : एकता तुमराम **पुनरीक्षण :** प्रतिका गुप्ता **कॉपी एडिटर :** अनुज उपाध्याय

जो बच्चे बेहतर महसूस करते हैं, वे बेहतर सीखते हैं

ललिता यदुवंशी

भरोसे पर आधारित एक अनुभव ने कई सम्बन्धों को गहरा किया और मुझे मौक़ा दिया कि मैं बच्चों द्वारा अपने व्यवहारों को संशोधित करने की हमारी अपेक्षाओं पर विचार कर सकूँ। इसने मुझे एहसास कराया कि कैसे स्कूल विद्यार्थियों और शिक्षकों, दोनों के लिए सीखने में सहायक माहौल प्रदान करता है। बेहतर जीवन मूल्यों को विकसित करने और आत्मसात करने के अवसर (स्कूल के माहौल में सुरक्षित महसूस करते हुए) हर दिन हमारे सामने ख़ुद को प्रस्तुत करते हैं। ये हमें सोचने-समझने के लिए एक आधार प्रदान करते हैं और हमें सार्थक जीवन जीने में मदद करते हैं। मैं कक्षा-2 के एक विद्यार्थी के साथ हुए अपने अनुभव को साझा करना चाहती हूँ। उसकी कहानी पिछले साल शुरू हुई जब वह कोविड-19 महामारी के बाद सितम्बर के महीने में स्कूल आना सीख ही रही थी। वह काफ़ी अधिक समय के लिए स्कूल से अनुपस्थित रहती थी जो सभी शिक्षकों के लिए चिन्ता का कारण था, क्योंकि बिना स्कूल आए और नियमित शिक्षा के बिना वह पीछे रह जाती थी। नियमित अन्तराल पर, उसकी कक्षा शिक्षक और अन्य शिक्षक उससे बात करते थे और समझाते थे कि उसके लिए नियमित रूप से स्कूल आना क्यों ज़रूरी है, लेकिन उनके प्रयास व्यर्थ रहे।

इस साल जून की शुरुआत में, वह कक्षा-2 में आई थी। मैंने उसका हाथ पकड़ा और उससे वादा लिया कि वह हर दिन स्कूल आएगी। वह एक मासूम मुस्कान से सहमत थी जो उसके चेहरे पर हमेशा रहती थी। उलझे बाल, गन्दी यूनिफॉर्म, अध्ययन सामग्री ग़ायब - मुझे नहीं पता था कि उसके साथ कहाँ से शुरू करना था। मुझे समझ नहीं आ रहा था कि उसे कैसे समझाया जाए कि वह अच्छी आदतों को आत्मसात नहीं करने और अपनी पढ़ाई के साथ तालमेल नहीं रखने से कितना कुछ खो देगी। मैंने दोनों मसलों पर उससे और उसके पिता से भी बात की।

इस साल, स्कूल असेम्बली के दौरान कहानी कहने की गतिविधि एक अभिनव तरीक़े से की गई थी। कठपुतलियों की मदद से कहानियाँ सुनाई गईं। कक्षा में बच्चों के लिए एक कठपुतली कोना भी बनाया गया था। मैंने देखा कि कठपुतली शो शुरू होने के बाद से उसने ज़्यादा स्कूल आना शुरू कर दिया था। कभी उसे पक्षी के साथ खेलते हुए देखा जा सकता था और कभी-कभी, कक्षा में चीज़ों को व्यवस्थित करते हुए। कभी-कभी, वह अन्य बच्चों के बारे में शिकायत करती थी जो कठपुतलियों का ठीक से उपयोग नहीं करते थे।

जल्द ही वह हर दिन स्कूल आने लगी। और फिर, यह सवाल उठा कि उसे पढ़ने और लिखने का मन बनाने में कैसे मदद की जाए। हमारे पास भी कोई तैयार जवाब नहीं था। लेकिन कुछ तो किया जाना था।

हमने पढ़ने और लिखने के साथ अनौपचारिक संवाद के लिए दो समूह बनाए ताकि बच्चों को प्रेरित किया जा सके, हम उन्हें अच्छी तरह से जान सकें और समय के साथ, हम सीखने के उनके प्रयासों में सकारात्मक बदलाव देख पाएँ। इस दौरान, इस लड़की ने एक सरल कहानी और कविता पढ़ना सीखा। उसने हर दिन अपना होमवर्क करना शुरू कर दिया। वह असाइनमेंट प्राप्त करना पसन्द करती थी और सबसे महत्त्वपूर्ण बात, हमारी निरन्तर बातचीत ने हम दोनों के बीच एक सम्मानजनक सम्बन्ध बनाया।

कुछ समय बाद, उसने अन्य सभी बच्चों के साथ कक्षा में सीखना शुरू कर दिया। उसका पढ़ना अभी भी धीमा था। तभी एक 'स्माइली फ्लावर' ने बच्चों में हलचल मचा दी। चौतरफ़ा विकास की दिशा में 'अच्छे प्रयास' करने वाले बच्चों को एक स्माइली फ्लावर दिया जाता था। उनके 'अच्छे प्रयासों' का दो से तीन पंक्तियों में वर्णन किया जाता था और यह स्माइली फ्लावर पूरी कक्षा के सामने उन्हें सौंपा जाता था। एक दिन, उसने पूछा, "क्या मुझे भी यह मिलेगा?" मैंने कहा, "हाँ, हर कोई इसे हासिल कर सकता है। हर कोई एक क्षेत्र या दूसरे क्षेत्र में बेहतर कर सकता है। तुम भी ऐसा कर सकती हो।" उसके प्रयासों में सुधार होता दिखा।

इसी बीच एक और घटना हुई। उसके बालों को शायद ही कभी कंघी किया जाता था। मैंने उससे कहा, "तुम अपने बालों को अच्छे से कंघी करके स्कूल आया करो।" उसने जवाब दिया, "मम्मी ऐसा नहीं करती हैं।" मैंने कहा, "ठीक है, हम मम्मी से बात करेंगे।" मैंने एक सीनियर छात्रा से कंघी उधार ली और उसके बालों को कंघी करके पोनीटेल बाँध दी। "घर जाकर इसे अपनी माँ को दिखाओ और उनसे हर दिन तुम्हारी इस तरह की पोनीटेल बनाने के लिए कहो", मैंने उससे कहा।

उस दिन, वह अपनी सभी कक्षाओं में अपनी पोनीटेल को घुमाती रही और आईने में देखती रही। मुझे नहीं पता कि वह क्या सोच रही थी, लेकिन उसके चेहरे पर मुस्कान थी।

अगले दिन जब वह स्कूल आई तो वह एक बदली हुई इन्सान थी! ऐसा लगा मानो वह आगे बढ़ने और ख़ुशी के साथ सीखने के लिए अपने भीतर एक विश्वास लेकर आई थी। अब तो रोज़ लंच के बाद वह मेरे पास आती है, खूब बातें करती है, पढ़ती है और एक-दो कहानी सुनाती है। उसने अपने सीखने के क्षितिज को व्यापक बना दिया है। ख़ाली समय में वह इंग्लिश रूम में जाती है और पढ़ने की कोशिश करती है। अब दूसरे बच्चे उसे नहीं छेड़ते; वे एक समूह में एक-दूसरे के साथ काम करते हुए पूरे मन से भावनात्मक सहयोग प्रदान करते हैं।

यह सिर्फ़ एक अनुभव से कहीं अधिक था; यह मेरे लिए सीखने का अवसर था। अच्छे स्वास्थ्य और ख़ुशी का अनुभव स्कूल के माहौल में ख़ुशहाली के पहलुओं को समझने की कोशिश में महत्त्वपूर्ण है। इसमें मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य, शारीरिक और भावनात्मक सुरक्षा और अपनेपन, उद्देश्यपूर्णता, उपलब्धि और सफलता की भावना शामिल है। ये हमें आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं और हमें एक-दूसरे से जुड़ने में मदद करते हैं, जिससे काम करने का सुखद माहौल बनता है। इस कारण से, मुख्य पहलुओं पर स्कूल समूह के भीतर औपचारिक और अनौपचारिक संवाद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। स्कूल के अन्दर और बाहर बच्चों की सफलता एक लोकतांत्रिक संस्कृति में अपनी क्षमताओं का उपयोग करने की उनकी क्षमता पर निर्भर करती है। इसलिए, स्कूल के वातावरण में बच्चों के शैक्षणिक प्रदर्शन, व्यवहार और सामाजिक समायोजन में सुधार के प्रयास किए जाने चाहिए।

शिक्षकों और स्कूल के स्टाफ को निम्नलिखित काम भी करने चाहिए :

- बच्चों से बातचीत करें।
- शिक्षण की अवधारणाओं के प्रभावी और नवीन तरीक़ों से अवगत रहें।
- विद्यार्थियों को चुनौतियों का सामना करने और बोरियत से बचने के लिए उनकी मनोवैज्ञानिक और शारीरिक क्षमताओं में सुधार करने में मदद करें।
- विद्यार्थियों को भावनात्मक सहयोग प्रदान करें।
- शारीरिक फिटनेस से सम्बन्धित पहलुओं पर उचित निर्णय लें।
- संवाद करने की क्षमता विकसित करने में विद्यार्थियों की मदद करें।
- सार्थक और भरोसेमन्द सम्बन्ध बना सकने में विद्यार्थियों की मदद करें।
- स्कूल की प्रक्रियाओं में थोड़ा लचीलापन लाएँ।
- सहयोगात्मक कार्य के अवसर पैदा करें।

एक शिक्षक के रूप में, मुझे लगता है कि किसी भी शिक्षक के लिए यह बहुत महत्त्वपूर्ण है कि वह अपने काम में प्रेरित, कुशल, जोश से भरा, ईमानदार और चिन्तनशील हो। स्कूल की स्वस्थ संस्कृति कार्यस्थल को सार्थकता प्रदान करने की दिशा में बहुत मददगार होती है। यह सभी की ऊर्जा और प्रभावशीलता को आगे बढ़ाने में सहायक होती है। बच्चों की ख़ुशहाली और शैक्षणिक उपलब्धि के बीच सीधा सम्बन्ध है। उपलब्धि के लिए बच्चों की ख़ुशहाली का ध्यान रखना एक महत्त्वपूर्ण शर्त है और ख़ुशहाली के लिए उपलब्धि आवश्यक है।

स्कूल के वातावरण को पोषित करने के लिए नीचे कुछ विशिष्ट प्रक्रियाएँ दी गई हैं, जिन्हें हम सभी शिक्षक और स्कूल प्रशासक मिलकर अपने स्कूल में स्थापित करने का प्रयास करते रहते हैं। ये प्रक्रियाएँ सहारा देने वाले वे मज़बूत सम्बन्ध बनाती हैं, जो बच्चों को उनके सुविधा क्षेत्रों से बाहर निकलने और नए विचारों और सोचने के तरीक़ों का पता लगाने के लिए भावनात्मक संसाधन प्रदान करते हैं, क्योंकि अकादमिक उपलब्धि के लिए ये बुनियादी ज़रूरतें हैं।

एक पोषक वातावरण बनाने की दिशा में हमारे प्रयासों में निम्नलिखित बातें शामिल हैं :

- बच्चों की प्रस्तुतियों को सुनने के लिए सभी के एक स्थान पर एकत्रित होने के साथ दिन की एक सुखद शुरुआत होना। इसके अतिरिक्त, वे अपनी राय व्यक्त करने के लिए एक सम्मानजनक अवसर प्राप्त करने की भावना के साथ स्वयं को संचालित करते हैं।
- स्कूल के समय का उपयोग बच्चों और एक-दूसरे के साथ हमारे सम्बन्धों को गहरा करने के लिए किया गया है, चाहे हम कक्षा में हों, खेल के मैदान में, पुस्तकालय में या फिर मध्याह्न भोजन और सामुदायिक यात्राओं आदि के दौरान। शिक्षकों और बच्चों के बीच अनौपचारिक बातचीत सभी के लिए ब्रेक लेने, दोस्तों के साथ खाने और गपशप करने, एक साथ पढ़ाई करने, एक-दूसरे की मदद करने, पारिवारिक परिस्थितियों के बारे में जानने आदि का अवसर होता है।
- बच्चे किसी पर विश्वास करके अपने मन की बातें बताना चाहते हैं और एक बार जब वे किसी शिक्षक को चुन लेते हैं, तो उस शिक्षक को एक सलाहकार की भूमिका निभाना चाहिए। ऐसी स्थिति में सार्थक संवाद आवश्यक है, जो स्थिति के आधार पर समूह में या व्यक्तिगत रूप से किया जाता है। इसके लिए एक समूह भी बनाया गया है।

- प्राथमिक कक्षाओं में, पीरियड की अवधि बढ़ा दी गई थी। जब बच्चों का कक्षा पीरियड छोटा होता है, तो उन्हें शिक्षण और सीखने के कई तरीक़ों का अनुभव करने, प्रश्न पूछने, अपनी शिक्षा पर चिन्तन करने और अपने मन की बात कहने का समय मिलने की सम्भावनाएँ कम होती हैं। नतीजतन, उनकी अकादमिक जुड़ाव की भावना प्रभावित होती है। लिहाजा पीरियड की लम्बी अवधि के आधार पर बच्चों के साथ सीखने के विभिन्न तरीक़ों पर काम किया जा रहा है।
- पढ़ने की संस्कृति बनाने की दिशा में प्रयास जारी हैं और सभी कक्षाओं में अधिकांश बच्चे पढ़ने के साथ सम्बन्ध बना पाते हैं। वे विभिन्न मंचों पर अपनी आवश्यकताओं और रुचियों से सम्बन्धित पठन सामग्री का चयन करते हैं और उन्हें साझा करते हैं। इसका प्रभाव उनकी वैचारिक और व्यावहारिक क्षमताओं को बढ़ा रहा है, जिससे वे बेहतर महसूस कर रहे हैं। वे अपनी डायरियों में लिखते भी हैं।

सरल शब्दों में कहें तो : 'जो बेहतर महसूस करते हैं, वे बेहतर सीख सकते हैं।'

चित्र-1 : कक्षा की गतिविधियों में संलग्न अज़ीम प्रेमजी स्कूल, टोंक के विद्यार्थी।

चित्र-2 : खेल के मैदान पर अज़ीम प्रेमजी स्कूल, टोंक के विद्यार्थी।

ललिता यदुवंशी टोंक, राजस्थान स्थित अज़ीम प्रेमजी स्कूल में भाषा शिक्षिका हैं। उन्होंने शिक्षा और हिन्दी साहित्य में स्नातकोत्तर डिग्रियाँ हासिल की हैं। उनकी रुचियों में पढ़ना, संगीत सुनना, फ़िल्में देखना, नई जगहों पर जाना और बच्चों के साथ बातचीत करना शामिल है। उनसे *lalita.yaduvanshi@azimpremjifoundation.org* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : निशांत राना **पुनरीक्षण :** भरत त्रिपाठी **कॉपी एडिटर :** अनुज उपाध्याय

समावेश का सही मतलब | 'सद्भावना विद्यालय' की ओर

सन्ध्या देवी

जब भी समावेशी स्कूल की बात निकलती है, यह कई बार दोहराया जाता है कि यह एक ऐसा स्कूल होता है जहाँ विशेष ज़रूरतों वाले बच्चे, 'सामान्य रूप में विकसित होते' विद्यार्थियों के साथ पढ़ते हैं। पर क्या एक समावेशी स्कूल की पहचान यहीं तक सीमित रहनी चाहिए? उन स्कूलों का क्या जहाँ कोई विशेष ज़रूरतों वाले बच्चे मौजूद नहीं हैं, पर उन्हें भी समावेशी होने की ज़रूरत है? आइए कुछ सवाल हम अपने आप से करते हैं : क्या सुबह की सभा का नेतृत्व करने का मौक़ा स्कूल के हर एक बच्चे को मिलता है? क्या कक्षा में हर एक बच्चे को बोलने का मौक़ा मिलता है? क्या कक्षा को सजाने की ज़िम्मेदारी लड़के और लड़कियाँ बराबरी से बाँटते हैं? इन सवालों के लिए ज़्यादातर लोगों का जवाब 'न' होगा। अगर हम सब साथ मिलकर काम करें, तो हम इनमें से कई चिन्ताओं का निवारण कर सकते हैं और अपने स्कूलों को सही मायने में समावेशी बना सकते हैं।

हम अपनी कक्षाओं में अक्सर यह देखते हैं कि कुछ कार्य, विद्यार्थियों के एक समूह को सौंपकर बाक़ी विद्यार्थियों को पीछे छोड़ दिया जाता है। चाहे हमें इसका एहसास हो या नहीं लेकिन कुछ विद्यार्थियों को इस तरह बाहर रखने पर उन्हें अवसरों से वंचित कर देते हैं। हम शिक्षकों द्वारा ही विद्यार्थियों को 'स्मार्ट' और 'कमज़ोर' समूहों में बाँट दिया जाता है। हम यह भी सोचते हैं कि सिर्फ़ बुद्धिमान विद्यार्थी ही सारे कार्य कुशलतापूर्वक कर सकते हैं और जो विद्यार्थी अकादमिक तौर पर प्रवीण नहीं हैं वे अन्य कार्य करने की क्षमता भी नहीं रखते। इस सोच से उन बच्चों के साथ-साथ स्कूल का विकास भी रुक जाता है।

हम हर एक बच्चे की विशिष्टता और असाधारण कार्य करने की उनकी क्षमता को क्यों नहीं पहचान पाते? इस सवाल को ध्यान में रखकर हमने शासकीय प्राथमिक विद्यालय, गीधा (नवागढ़ ब्लॉक, जांजगीर चाम्पा ज़िला, छत्तीसगढ़) में समावेशी वातावरण बनाने की ठानी। हमारी इस मुहिम को सहयोग देने के लिए न केवल स्कूल, बल्कि पूरा समुदाय साथ आ गया। इस मुहिम के तहत हमने जो गतिविधियाँ कीं, उनका ज़िक्र नीचे किया गया है।

संविधान दिवस मनाना

हमारे स्कूल को समावेशी बनाने के लिए 'विचारों में खुले' होने की एक नींव स्थापित करना बहुत ज़रूरी था, ताकि बच्चे अपने जीवन में नए ख़्यालों के प्रति ग्रहणशील हों।

संविधान दिवस पर हमने संवैधानिक मूल्यों और अधिकारों को लिखकर दीवारों पर चिपकाया ताकि बच्चे उन्हें पढ़ने और उनके बारे में जानने के लिए उत्सुक हों। हमने संवैधानिक मूल्यों पर चर्चा की और बच्चों को अपने विचारों को साझा करने के लिए एक खुला मंच दिया।

हमने रूढ़िबद्ध धारणाओं पर चर्चा की। लड़कों व लड़कियों द्वारा किए जाने वाले काम पर भी विस्तार से अपने विचार साझा किए। पूरी चर्चा में, लगभग हर बच्चे की यही सहमति थी कि काम का विभाजन जेंडर के आधार पर नहीं होना चाहिए।

संविधान के नीति-निर्धारित नियमों की चर्चा के माध्यम से बच्चों को अपने स्कूल के नियम बनाने की आज़ादी दी गई। आपस में नियमों की चर्चा करने के बाद, बच्चों ने उन्हें लिखकर, सबके हस्ताक्षरों के साथ स्कूल की दीवार पर चिपका दिया।

सुबह की सभा में अन्तर-धार्मिक प्रार्थना शामिल की गई ताकि सारे धर्मों के प्रति आदर की भावना विकसित की जा सके। इसके अलावा बच्चों को समूहों में बाँट दिया गया जिनके ऊपर हर दिन सुबह की सभा की अगुआई करने की ज़िम्मेदारी थी। हर बच्चे को आगे आकर 'आज का विचार' या किसी थीम पर आधारित विचार को कहने/ पढ़ने का मौक़ा दिया जाता है।

मध्याह्न भोजन के लिए साथ में बैठना

मध्याह्न भोजन के लिए शिक्षक और बच्चे साथ में बैठते हैं और उस वक़्त बच्चों के जीवन के मसलों के बारे में बात करते हैं। ऐसा करने से बच्चे शिक्षकों के साथ सहज महसूस करने लगते हैं और उन्हें भरोसा हो जाता है कि हम भी उन्हीं की तरह हैं। स्कूल में रसोइयों और लड़कियों के साथ, लड़के भी भोजन परोसने की ज़िम्मेदारी उठाते हैं। स्कूल के सभी कामों जैसे कि

झाड़ू लगाना, कक्षा को सजाना, टेबल-कुर्सियाँ उठाना, सफ़ाई रखना, बाग़वानी, इत्यादि में सभी बच्चों और शिक्षकों की समान भागीदारी सुनिश्चित की जाती है।

कक्षा की बैठक व्यवस्था में परिवर्तन

हमें लगा कि बच्चों की पंक्तियों की सामान्य बैठक व्यवस्था में हम हर एक विद्यार्थी तक व्यक्तिगत रूप से नहीं पहुँच पा रहे थे। इस वजह से कुछ विद्यार्थी सभी गतिविधियों में हिस्सा नहीं ले पा रहे थे। हमने एक नई बैठक व्यवस्था अपनाकर देखने का निर्णय लिया, यह सोचते हुए कि अगर यह प्रभावी साबित नहीं हुई तो हम पहले वाली व्यवस्था पर लौट जाएँगे। नई बैठक व्यवस्था एक अर्ध गोले के आकार में थी और बच्चों को ख़ूब पसन्द आई। यह कारगर इसलिए साबित हुई क्योंकि हर बच्चे तक पहुँचना आसान हो गया था और सामूहिक गतिविधियों के लिए कक्षा के बीच में काफ़ी जगह थी। हम अब कक्षा में ही अपना भोजन मिल-बाँटकर खाते हैं और भिन्न-भिन्न गतिविधियों में हिस्सा लेते हैं।

बच्चों का कोना

वैसे तो पूरा स्कूल बच्चों का है, लेकिन उनका सारा काम और रचनाएँ उनकी कॉपियों के अन्दर उनके बस्तों में छिपी रहती हैं। हर बच्चे का एक विशेष हुनर होता है, जिसका प्रदर्शन करना बड़ा ज़रूरी होता है। इसलिए हमने हर कक्षा में एक बच्चों का कोना बनाने के बारे में सोचा। इस गतिविधि के लिए हमने कक्षा में ब्लैकबोर्ड के नीचे वाली दीवार को चुना। हर बच्चा अपना प्रोजेक्ट कार्य या अपनी रचनाएँ उस दीवार पर लटका सकता है। पूरी कक्षा के सामने अपनी रचनाएँ प्रदर्शित कर बच्चों को विशेष होने की अनुभूति होती है। इससे उन्हें और ज़्यादा नई और कल्पनाशील चीज़ें करने का प्रोत्साहन भी मिलता है। बच्चे अपने इस 'विशेष' कोने से बेहद ख़ुश हैं।

स्कूल की सजावट में भागीदारी

स्कूल को रंगने के कार्य के दौरान हमनें अद्भुत समय बिताया और हमें कई सारे सवालों के जवाब भी मिले। इस कार्य में बच्चों के साथ ही गाँववासियों ने भी हमारे प्रयासों की सराहना करके तथा मदद का प्रस्ताव देकर इस कार्य में पूरी तरह हिस्सा लिया। कक्षा-5 के एक विद्यार्थी ने दीवार को रंगते हुए पूछा, "मैम, हम स्कूल को इतनी ज़ोरों से ख़ूबसूरत बनाने के प्रयास में लगे हैं, पर हमारे जाने के बाद ये सब कौन करेगा?" जब उसने यह पूछा, तो मैं उसकी आँखों में इस संस्थान के लिए प्यार और अपनत्व देख पा रही थी।

अभिभावकों की बैठकों का आयोजन

हमें यह एहसास हुआ कि विद्यार्थियों के माता-पिता और शिक्षकों के बीच कोई सम्पर्क स्थापित नहीं हुआ है, जिसके कारण हमारे पास बच्चों के रोज़ के जीवन, उनकी आदतों, समस्याओं या घर की परिस्थितियों की कोई जानकारी नहीं थी। इसी तरह अभिभावक भी अपने बच्चों के विकास और स्कूल की गतिविधियों को लेकर अँधेरे में थे। इसे ध्यान में रखते हुए हमने तीसरी से पाँचवी तक के विद्यार्थियों के माता-पिता के लिए एक शिक्षक-अभिभावक मीटिंग रखने का फ़ैसला किया। इस मीटिंग में बड़ी संख्या में अभिभावकों ने अपनी उपस्थिति दर्ज की; अपनी चिन्ताएँ साझा कीं और उपयोगी सुझाव भी दिए। हमने उन्हें अर्धवार्षिक परीक्षाओं की जँची हुई उत्तर पुस्तिकाएँ भी दिखाईं। अपने बच्चों के विकास के लिए उनसे उनका सहयोग भी माँगा गया। नवोदय विद्यालय पर एक चर्चा हुई और उसके फ़ायदे भी समझाए गए।

इससे पहले, बच्चों के माता-पिता कभी ऐसी बैठक में शामिल नहीं हुए थे। इस बैठक में भी सारे अभिभावक नहीं आए थे। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि उन्होंने अपने बच्चों से जुड़े हुए ज़रूरी मसलों पर पहले कभी चर्चा ही नहीं की थी। इसके बावजूद, वहाँ मौजूद हर एक अभिभावक ने चर्चा में हिस्सा लिया। कुछ बच्चों की नानी-दादी आई थीं; वे ख़ुद औपचारिक रूप से शिक्षित नहीं थीं पर अपने बच्चों के भविष्य की चिन्ता करते हुए उन्होंने हमें बच्चों को अच्छी शिक्षा देने के निर्देश भी दिए, जो कि हमारे लिए एक बहुत सकारात्मक अनुभव था।

अभिभावकों से घर पर मिलना

कुछ बच्चे ऐसे हैं जो स्कूल से निरन्तर अनुपस्थित रहते हैं और उनके माता-पिता बैठक में भी नहीं आए थे, इसलिए हमारा उनसे मिलना बड़ा आवश्यक था। हमने उनके घर जाकर उनसे मिलना तय किया। और भी कारण थे, जैसे, हमने पाँचवी कक्षा के एक मेधावी बच्चे में अचानक कुछ बदलाव देखा, जो कि कक्षा व स्कूल की हर गतिविधि में हमेशा सबसे आगे रहता था, चाहे पढ़ाई हो या कोई और काम। वह उदास और चिड़चिड़ा हो गया। वह किसी भी गतिविधि में हिस्सा नहीं लेना चाहता था। हमने उसके दोस्तों से पूछा, पर कुछ पता नहीं चला। उसने नवोदय विद्यालय का फ़ॉर्म भरने से भी इन्कार कर दिया था। कक्षा में भी नहीं आना चाहता था। जब हम उसके घर गए और उसकी माँ से मिले तो हमें पता चला कि उसके घर में लगातार होने वाले लड़ाई-झगड़ों की वजह से वह

मानसिक और भावनात्मक रूप से प्रभावित हो रहा था। उसके अभिभावक से बात करके हम उन्हें यह बात समझाई। इससे कुछ हद तक मदद मिली और अब वह बच्चा धीरे-धीरे अपने पहले वाले अन्दाज़ में वापस आ रहा है।

सारे धर्मों के त्योहार मनाना

इस गतिविधि का मुख्य कारण यह था कि बच्चों को अन्य धर्मों के बारे में कुछ भी नहीं पता था। जिन्हें अन्य धर्मों के बारे में थोड़ा-बहुत पता भी था, वे भी उन धर्मों का सम्मान नहीं करते थे, इसलिए यह गतिविधि करना अत्यन्त आवश्यक था।

हमने शुरुआत क्रिसमस मनाकर की। हमने पहले विद्यार्थियों से पूछा कि वे क्रिसमस के बारे में क्या जानते हैं और फिर इस बारे में बात की कि यह त्योहार आख़िर क्यों मनाया जाता है। इस गतिविधि के दौरान हमें पता चला कि कुछ बच्चे इसमें हिस्सा लेने में हिचकिचा रहे थे। इसका कारण यह था कि जो बातें उन्होंने सुनी हुई थीं, उन्होंने उनके दिमाग़ों में उनके अपने धर्म के अलावा बाक़ी सभी धर्मों के विरुद्ध पूर्वाग्रह बना दिए थे। एक लम्बी बातचीत के बाद हम उनकी कुछ ग़लतफ़हमियों को दूर कर पाए और फिर सारे बच्चों ने क्रिसमस वाली टोपियाँ बनाईं और बढ़िया समय व्यतीत किया।

ये कुछ छोटे तरीक़े हैं जिनके द्वारा हमारी स्कूल टीम (शिक्षक और बच्चे), अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन के सदस्यों के साथ हमारे स्कूल को समावेशी बनाने की कोशिश में जुटी है।

सन्ध्या देवी शासकीय प्राथमिक विद्यालय, गीधा (जांजगीर ज़िला, छत्तीसगढ़) में पढ़ाती हैं। वे 2013 से अध्यापन के पेशे में हैं। उनके पास अँग्रेज़ी में स्नातकोत्तर डिग्री है और उनकी रुचि प्राथमिक कक्षाओं को गणित पढ़ाने में है। उन्हें गाने में आनन्द आता है। उनसे *sandhyadevi1986@gmail.com* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : आदर्श मोदी **पुनरीक्षण :** भरत त्रिपाठी **कॉपी एडिटर :** अनुज उपाध्याय

भेदभाव और बहिष्करण का ख़ात्मा | 'सद्भावना विद्यालय' की ओर

सावित्री साहू

स्कूल एक ऐसी संस्था होती है जो बच्चों को संवैधानिक मूल्यों के प्रति जागरूक करते हुए उन्हें इन मूल्यों को आत्मसात करने में मदद करती है। सीखने को बेहतर बनाने के लिए और वर्तमान में तथा आगे वयस्कों के रूप में बच्चों को कामयाबी हासिल करने में मदद करने के लिए, स्कूलों को समानुभूति और समानता का माहौल बनाना चाहिए। इसे सुनिश्चित करने के सबसे महत्त्वपूर्ण तरीक़ों में से एक है बच्चों को कक्षा की तमाम गतिविधियों, खेल के मैदान में और रोज़ की सभा में शामिल करते हुए स्कूल में उनके साथ बराबरी का व्यवहार करना और उनकी स्वतंत्र सोच और राय का सम्मान करना। स्कूल बच्चों के व्यवहार में बदलाव लाता है और उन्हें अपने लिए एक बेहतर भविष्य निर्मित करने के लिए तैयार करता है। यह उनको समाज के बारे में सोचने के लिए भी प्रेरित करता है।

स्कूल आने वाले बच्चों में हम आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और जातीय पृष्ठभूमि में विभिन्नता देखते हैं और उनके रीति-रिवाज़ों एवं विचारधाराओं में अन्तर होता है। स्कूल के भीतर बच्चों के व्यवहारों में उनकी पारिवारिक और सामाजिक पृष्ठभूमियों से जुड़े भेद प्रतिबिम्बित होते हैं। इन व्यवहारों के परिणामस्वरूप बच्चों की शिक्षा के विकास को रोकने वाले कारणों को चिन्हित करना चाहिए और उनके बारे में कक्षा में और उसके बाहर चर्चा करनी चाहिए।

मुझे कक्षाओं में उन बच्चों के साथ काम करने का मौक़ा मिला है जो सामाजिक, शारीरिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और जातीय रूप से विभिन्नता लिए हुए थे। व्यक्तिगत रूप से मैंने उन बाधाओं का सामना किया जो समावेशन को हासिल करने में आती हैं। मैं इस लेख में अपने अनुभवों तथा उन प्रयासों को बाँटना चाहूँगी जो मैंने आमतौर पर जेंडर, जाति, वर्ग, धर्म और अन्य मतभेदों के प्रति स्थापित ग़लत धारणाओं से ऊपर उठने में बच्चों की मदद करने के लिए उठाए थे।

जेंडर आधारित अलगाव

मेरी कक्षाओं और स्कूलों में, आमतौर पर, जिस पहली चुनौती का मैंने सामना किया वह थी जेंडर आधारित भेदभाव। हालाँकि, यह हो सकता है कि बच्चे इसके प्रति जागरूक भी न हों और हम शिक्षक इसे स्वीकार न करते हों, लेकिन जेंडर आधारित अलगाव हमारे चारों तरफ़ मौजूद है। जब मैं ऐसी कक्षा में विभिन्न विषय पढ़ाती हूँ, जहाँ विद्यार्थियों को समूहों में काम करना होता है, तो मैंने देखा है कि आमतौर पर लड़के लड़कों को और लड़कियाँ लड़कियों को अपने समूह में चुनती हैं। साथ बैठने, बातें करने, जोड़ों में पढ़ने और आउटडोर खेलों के दौरान भी हम उनका यही व्यवहार देखते थे। लड़के और लड़कियाँ, दोनों ही अपनी व्यक्तिगत चीज़ें जैसे पेन, क्रेयॉन आदि भी एक-दूसरे के साथ नहीं बाँटते थे।

मेरा मानना है कि छोटे बच्चों में ऐसा व्यवहार समावेशी समाज की राह में एक बाधा है। इसलिए मैंने अपनी कक्षा में संवाद को बढ़ावा देने वाला माहौल बनाया। उदाहरण के लिए, मैंने उनसे कहा कि उनकी कक्षा की नीलम एक अत्यधिक मेधावी नृत्यांगना और कलाकार है, क्या वे उससे ये कौशल नहीं सीखना चाहेंगे? कि वेदिका और दीक्षा बेहद ख़ूबसूरत गीत और कहानियाँ लिखती हैं, तो क्या वे उनसे यह सीखना नहीं पसन्द करेंगे? कि देवराज जो खेलों में बहुत अच्छा करता है और दूसरों को भागीदारी के लिए प्रोत्साहित करता है, तो क्या वे उसके साथ खेलना नहीं चाहेंगे? हमने साथियों से सीखने के रास्ते में आने वाली चुनौतियों के बारे में और कक्षा में उनसे कैसे मदद लेनी है, इस बारे में भी चर्चा की। मैंने बच्चों को परस्पर सहयोग करने के लिए प्रेरित किया और इस बात पर ज़ोर दिया कि लड़के-लड़कियाँ दोनों एक-दूसरे के दोस्त हो सकते हैं। मैंने उन्हें यह एहसास दिलाया कि वे घरेलू कामों जैसे झाड़ू लगाने, पानी लाने, बर्तन माँजने में अपनी माँ की और बग़ीचे में व घर का सामान लेकर आने में अपने पिता की बहुत आसानी से मदद करते हैं। चाहे वे लड़के हों या लड़की सभी लोग खेलना, पढ़ना, लिखना, घूमना और मज़े करना चाहते हैं। शारीरिक विभिन्नताओं के अलावा एक लड़की और एक लड़के में कोई अन्तर नहीं होता।

मैंने साथ मिलकर काम करने के मूल्य को बताने के लिए लड़के और लड़कियों को बारी-बारी से एक गोले में बिठाया। समूह बनाते समय भी हमने इसे ध्यान में रखा। आज, मेरी कक्षा में किसी तरह का जेंडर आधारित अलगाव नहीं है। बच्चे एक साथ खेलते हैं और परस्पर सहानुभूति दिखाते हैं। जब मैं प्रशिक्षण कार्यक्रमों अथवा किसी अन्य काम से बाहर जाकर

कक्षा में वापस लौटती हूँ तो विद्यार्थी मुझे मेरी अनुपस्थिति में एक-दूसरे को पढ़ाने और सीखने के अनुभवों के बारे में बताते हैं। एक बार मैं आधे दिन के लिए स्कूल में नहीं थी। जब मैं अगले दिन स्कूल आई तो मैंने देखा कि हरीश को चोट लग गई थी। बाक़ी सभी बच्चे उसे लेकर बहुत चिन्तित हो गए थे। इसलिए हम उससे मिलने गए। सभी बच्चे यह देख कर ख़ुश थे कि हरीश की हालत में सुधार हो रहा था। सभी ने उसे सुरक्षित रहने और जल्दी ठीक होने के लिए सुझाव दिए। हमने हरीश के अभिभावक से बात की और वे भी हमसे मिलकर बेहद ख़ुश हुए।

बच्चों में उनके सहपाठी के लिए इतनी फ़िक्र देखकर मुझे बहुत अच्छा लगा और सराहना का भाव पैदा हुआ क्योंकि मैं उनमें मानवीय मूल्य पनपते देख पा रही थी। इससे उन्हें उत्कृष्ट नागरिक के रूप में विकसित होने में मदद मिलेगी, चाहे उनका जेंडर कुछ भी हो।

आर्थिक असमानता

अमीर और ग़रीब परिवारों में असमानता एक अन्य अवरोध था जिसे मैंने अपनी कक्षा में देखा। इसका बच्चों पर ऐसा असर था कि वे स्वयं को या अपने परिवार को महत्त्व नहीं देते थे। एक बच्चे ने कहा, "हम अमीर नहीं हैं, इसीलिए कोई हमारे घर नहीं आता। लोग अमीर लोगों के घरों में अक्सर जाते हैं।" लेकिन मैंने बच्चों को यह बताया कि यह सही नहीं है। "हमारे स्कूल को देखो, यहाँ अलग-अलग प्रकार के घरों के बच्चे पढ़ने आते हैं। हमारे स्कूल में किसी भी विद्यार्थी के साथ भेदभाव नहीं किया जाता। कक्षा में सभी बच्चे समान तरीक़े से सीखते हैं और सभी को बोलने और सवाल पूछने का समान अवसर दिया जाता है," मैंने उन्हें समझाया। और कुछ दिनों के बाद उस बच्चे को ग़लत साबित करने के लिए मैं और बाक़ी विद्यार्थी उस बच्चे के घर गए और उसके परिवार के साथ कुछ समय बिताया। बच्चे को इससे बहुत ख़ुशी हुई।

जातिगत भेद

बच्चों का आपस में जाति के बारे में बात करना और घोषित करना कि मैं इस जाति का हूँ और तुम उस जाति के हो, कक्षा में मेरा तीसरा अवरोध था। सम्भवतः बच्चे यह सब अपने घरों में देखते हैं और वे इस बात पर भरोसा करने लगते हैं कि कुछ ख़ास जातियों के लोग ही कुछ ख़ास तरह के काम करते हैं, जैसे लोहार, नाई, चरवाहा आदि। भेदभाव की यह व्यवस्था अभी भी गाँवों में देखी जा सकती है। बच्चे अपने समुदाय में अन्य लोगों में यह व्यवहार देखते हैं और उसका अनुकरण करने लगते हैं।

मैंने इस मुद्दे पर उनसे चर्चा की और पूछा, "अगर कोई किसी ख़ास जाति का है तो इससे क्या फ़र्क़ पड़ता है? सबसे पहले और सबसे प्रमुख रूप से हम सभी इन्सान हैं।" मैंने उन्हें उदाहरण दिया कि आमतौर पर सभी इन्सानों के पास दो हाथ, दो पैर और शरीर के अन्य अंग होते हैं। बच्चे इसके बारे में सोचने लगे। मैंने उन्हें बताया "स्वतंत्र इच्छा और काम करने की चाह के साथ आज की दुनिया में कोई भी कुछ भी बन सकता है।"

हमारे स्कूल में सभी विद्यार्थियों के साथ बराबरी का व्यवहार किया जाता है। स्कूल में बच्चे की जाति के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जाता। सभी बच्चे दोपहर का भोजन साथ में करते हैं। साथ में पढ़ते हैं, साथ में खेलते हैं। वे इस बात को भी समझ गए हैं कि समाज में हर एक के काम का महत्त्व है। चूँकि हम सारे काम ख़ुद ही नहीं कर सकते तो लोहार, जो लोहे के समान बनाता है, वह उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि कोई किसान या चरवाहा। हम अपने काम को पूरा करने के लिए और अपने जीवन निर्वाह के लिए दूसरों के काम पर निर्भर करते हैं।

बहुत-सी ऐसी चर्चाओं के बाद हम अब अपने स्कूल के बच्चों में किसी तरह का जातिगत भेदभाव नहीं पाते हैं। जब बच्चों के माता-पिता स्कूल में आते हैं तो उन सभी के साथ बराबरी का व्यवहार किया जाता है। इससे यह भी पता चलता है कि हम शिक्षक भी भेदभाव नहीं करते हैं।

सामाजिक बहिष्करण

मुझे सामाजिक बहिष्करण का एक मामला पता चला। गाँव और समाज के लोगों द्वारा गाँव के कुछ सदस्यों का बहिष्कार कर दिया था। इस तरह के बहिष्करण का बच्चों पर गहरा असर पड़ता है और उनके नज़रियों और विचारों में फेरबदल हो जाता है। ऐसी चीज़ों के बारे में बच्चे स्वयं सोचने में समर्थ नहीं होते, वे अपने परिवार के सदस्यों और अन्य बड़े-बूढ़ों को देखते हैं और उनका अनुसरण करने लगते हैं। मेरी कक्षा की एक लड़की रागिनी के परिवार का समाज ने बहिष्कार कर दिया था। इसके परिणामस्वरूप अन्य बच्चों के साथ, उसकी पड़ोसी और अच्छी दोस्त, जो उसी की कक्षा में पढ़ती है और उसके साथ पेन, नोटबुक, रंग जैसे सामान बाँटती थी, ने उसके साथ ये सभी चीज़ें बाँटनी बन्द कर दीं। उसने रागिनी के साथ खेलना, पढ़ना और यहाँ तक कि बैठना भी बन्द कर दिया। मैंने बच्चों से पूछा कि वे उसके साथ ऐसा व्यवहार क्यों कर रहे हैं और मुझे उनसे पता चला कि रागिनी के परिवार को गाँव के समाज ने बहिष्कृत कर दिया था। उन्हें गाँव में किसी के घर भी जाने और किसी से भी बात करने से रोक दिया गया था। इससे मुझे बहुत गहरा धक्का लगा। मैंने बच्चों से कहा कि, "वे जो कर रहे हैं वह ग़लत है। देखो, रागिनी हमारे स्कूल में पढ़ाई करने के लिए आती है। हम उसके साथ किसी तरह

का भेदभाव नहीं करते। हम पढ़ते समय, लिखते समय और खेलते समय उसे अन्य बच्चों के साथ बिठाते हैं। बच्चे उसके साथ ख़ाना खाते हैं, उससे बातें करते हैं। वह भी इन्सान है। हमें इन्सानी मूल्यों को ध्यान में रखते हुए उसके साथ प्यार और सम्मान का व्यवहार करना चाहिए। अगर कोई तुम्हारे साथ इस तरह व्यवहार करे तो तुम्हें कैसा लगेगा?" मैंने पूछा। बच्चे इस बात को समझ गए और उन्होंने रागिनी से फिर से दोस्ती कर ली। एक दिन हम पूरी कक्षा के साथ रागिनी के घर गए। हमने उसके माता-पिता से बातचीत की और उनके साथ चाय पी। सामाजिक बहिष्करण के साथ अपनी असहमति पर ज़ोर देने के लिए हमने बच्चों से एक अन्य बहिष्कृत परिवार से शिक्षकों की चाय बनाने के लिए दूध लाने को कहा। पहले वे हिचक रहे थे, लेकिन अब वे उस परिवार से स्कूल के लिए नियमित दूध लाते हैं।

इन सारी घटनाओं से मुझे बच्चों को बेहतर ढंग से समझने, उनकी सामाजिक व आर्थिक विचारधाराओं को जानने के साथ ही इस बात पर विचार करने का अवसर मिला कि कैसे सामाजिक रवैए जो समाज में भेदभाव और अलगाव पैदा करते हैं, बच्चों को भी आज्ञा मानने वाले व दब्बू बना देते हैं और उन्हें स्वतंत्र रूप से सोचने से रोकते हैं। शिक्षकों के रूप में हमारी सामूहिक ज़िम्मेदारी है कि हम बच्चों के भीतर सहानुभूति, समानुभूति और मैत्री की भावना भरें जिससे हर एक की वृद्धि और विकास सुनिश्चित होंगे।

*बच्चों की पहचान सुरक्षित रखने के लिए नाम बदल दिए गए हैं।

सावित्री साहू जामगाँव (ज़िला बेमतरा, छत्तीसगढ़) के शासकीय प्राथमिक विद्यालय में सहायक अध्यापिका हैं। उन्होंने शिक्षा में स्नातकोत्तर डिग्री के साथ ही डिप्लोमा हासिल किया है। उन्हें प्राथमिक स्कूल में पढ़ाने का 15 साल का अनुभव है। उन्हें भाषाएँ और गणित पढ़ाने में मज़ा आता है। वे ख़ासतौर पर क्रियात्मक शोध में रूचि लेती हैं। शिक्षक के रूप में अपने काम में उन्हें शैक्षिक गतिविधियों में बच्चों की रुचि को बढ़ाना, ग्रामीण इलाके में उनके माहौल से विभिन्न सामाजिक अवरोधों को दूर करना और चर्चाओं के माध्यम से मूल्ययुक्त शिक्षा देना अच्छा लगता है। उनसे *savitrisahu0011989@gmail.com* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : अमिता शीरीं **पुनरीक्षण :** भरत त्रिपाठी **कॉपी एडिटर :** अनुज उपाध्याय

बच्चों की सामाजिक और भावनात्मक ज़रूरतों को सीखने की अवधारणाओं और नतीजों के साथ जोड़ा जाना चाहिए। इसे बढ़ावा देने के लिए कई शैक्षणिक तरीक़े अपनाए जा सकते हैं। इनमें ख़ास हैं — खेल, नाटक, कला, समूह गतिविधि, सहमति-असहमति की गुंजाइश वाली गतिविधियाँ, ज़ोर से पढ़ना, सक्रिय रूप से सुनना, खुली चर्चा और स्वतंत्र लेखन। इस तरह की गतिविधियों से बच्चों का सर्वांगीण विकास होता है।

- चिक्कावीरेश एस वी, प्रोजेक्ट कार्य के माध्यम से सामाजिक-भावनात्मक शिक्षा, पेज 27

भावनाओं को नियंत्रित करने के लिए कुछ सरल गतिविधियाँ

शालिनी सोलंकी

बच्चे अपनी भावनाओं को नियंत्रित करने, दूसरों के साथ घुलने-मिलने या तनाव को नियंत्रित करने की क्षमता से लैस होकर दुनिया में नहीं आते हैं। चूँकि तनाव और भावनाएँ जीवन का एक स्वाभाविक हिस्सा हैं, इसलिए इनका सामना करना सीखना महत्त्वपूर्ण है। नीचे बताई गई गतिविधियाँ बच्चों को उनकी भावनाओं को नियंत्रित करने; दूसरों के प्रति सहानुभूति रखने; उद्देश्यों को निर्धारित करने और प्राप्त करने; सधे हुए निर्णय लेने; और स्वस्थ सम्बन्ध बनाने के लिए ज़रूरी समझ, मिज़ाज और क्षमताओं को हासिल करने में मदद करती हैं।

सकारात्मक आत्म-संवाद

सकारात्मक आत्म-संवाद का अर्थ है स्वयं के प्रति दयालु होना। यह एक ऐसा गुण है जो बच्चों को उनके भीतर से बदलने में मदद कर सकता है, उदाहरण के लिए, 'मैं अगली बार बेहतर कर सकती हूँ' या 'मैं अपनी ग़लतियों से सीखना चाहती हूँ, उनकी वजह से पीछे नहीं रहना चाहती।' सकारात्मक आत्म-संवाद तनाव और चिन्ता से निपटने में सहायक होता है और हौसला बढ़ाता है। मैंने अपने विद्यार्थियों को इस विषय से सम्बन्धित तीन गतिविधियाँ करवाईं।

सबसे पहले, सकारात्मक या नकारात्मक आत्म-संवाद की पहचान कर पाने के उद्देश्य से मैंने उन्हें विभिन्न उदाहरण दिए, जैसे 'मैं नाकामयाब व्यक्ति हूँ और मैं इस अभ्यास को पूरा नहीं कर पाऊँगी' या 'मेरे भीतर इस विज्ञान मॉडल को बनाने की इच्छाशक्ति है', ताकि वे नकारात्मक और सकारात्मक आत्म-संवाद के बीच अन्तर कर पाएँ। दूसरी गतिविधि डेस्क पर एक साथ बैठने वाले बच्चों के साथ की गई थी। इस गतिविधि में, पास बैठने वाले बच्चों को एक-दूसरे के नकारात्मक आत्म-संवाद को सकारात्मक आत्म-संवाद में बदलना था।

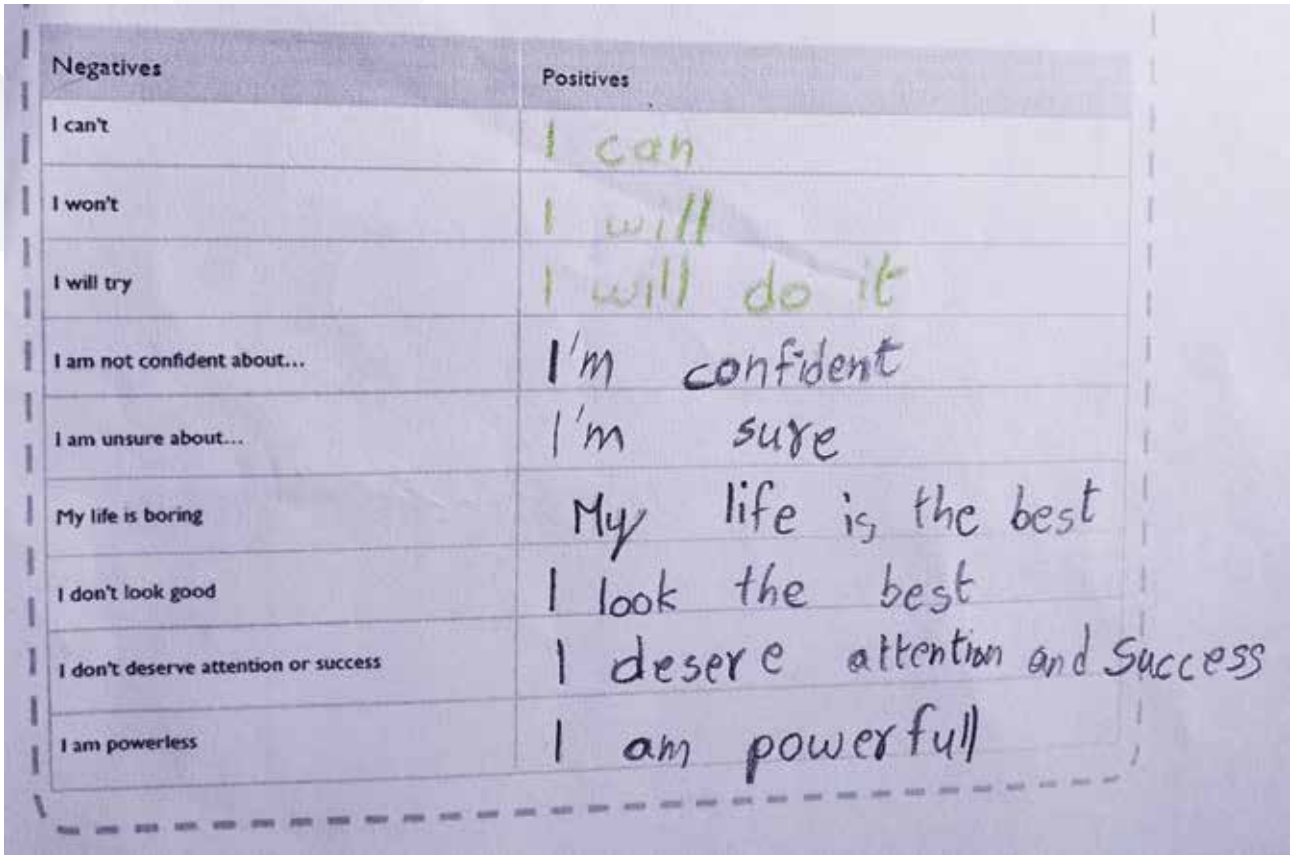

Negatives	Positives
I can't	I can
I won't	I will
I will try	I will do it
I am not confident about...	I'm confident
I am unsure about...	I'm sure
My life is boring	My life is the best
I don't look good	I look the best
I don't deserve attention or success	I desere attention and Success
I am powerless	I am powerfull

चित्र-1 : नकारात्मक और सकारात्मक कथनों के साथ एक पूर्ण वर्कशीट।

उदाहरण के लिए :

साथी-1 (नकारात्मक आत्म-संवाद) : मैं अँग्रेज़ी की परीक्षा में फेल हो जाऊँगी। मेरे माता-पिता मुझे डाँटेंगे।

साथी-2 (सकारात्मक आत्म-संवाद) : मैंने परीक्षा के लिए मन लगाकर पढ़ाई की है और इस कारण मैं इस परीक्षा में अच्छा प्रदर्शन कर सकूँगी।

इस गतिविधि के बाद, हमारी चर्चा हुई। मैंने नकारात्मक आत्म-संवाद के उदाहरण देते हुए उनसे कई सवाल किए जैसे 'सकारात्मक होने पर इसका उलटा वाक्य कैसा होता?' हमने सकारात्मक आत्म-संवाद का उपयोग करने के लाभों और नकारात्मक आत्म-संवाद की कमियों पर भी चर्चा की।

इसके बाद, उनके दैनिक जीवन के विभिन्न पहलुओं में सकारात्मक सोच को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से, मैंने उन्हें कुछ नकारात्मक कथनों वाली एक वर्कशीट दी और उन्हें इन कथनों को सकारात्मक वाक्यों में बदलने के लिए कहा। इस वर्कशीट ने इस विचार को पुख़्ता किया कि जब हम अपने बारे में नकारात्मक बातें करते हैं, तो हम अपने उद्देश्यों का पीछा करने और उन्हें प्राप्त करने से स्वयं को रोक रहे होते हैं। स्वयं के बारे में नकारात्मक सोच, हमें ख़ुश कर सकने वाली गतिविधियों में शामिल होने और नई चीज़ों करने में भी बाधक हो सकती है।

निर्णय लेना

मैंने कक्षा-7 के अपने विद्यार्थियों को रॉबर्ट फ्रॉस्ट की एक कविता, 'The Road Not Taken' दी। इस कविता की आख़िरी तीन पंक्तियाँ विशेष रूप से उभरकर आईं : "Two roads diverged in a wood, and I—/ I took the one less travelled by, and that has made all the difference (एक जंगल में दो सड़कें अलग-अलग हो गईं और मैंने-/ मैंने उस सड़क को चुना, जिसमें कम यात्री जाते थे और उसी ने सारा मंज़र बदल दिया।)" इन पंक्तियों में, जब रॉबर्ट फ्रॉस्ट सड़क पर चलते हुए एक दोराहे पर आए, तो उन्हें दो विकल्पों में से किसी एक का चुनाव करना था जो उनके जीवन की दिशा को हमेशा के लिए बदल देने वाला था। हम सभी के सामने विकल्प और अवसर आते हैं और हमें जीवनपर्यन्त कोई-न-कोई निर्णय लेते रहना होता है। निर्णय लेने में शुरुआती शिक्षण, बच्चों को ग़लत और हड़बड़ी में निर्णय लेने से बचाने और उन्हें सोचा-समझा चुनाव करने में मदद करता है।

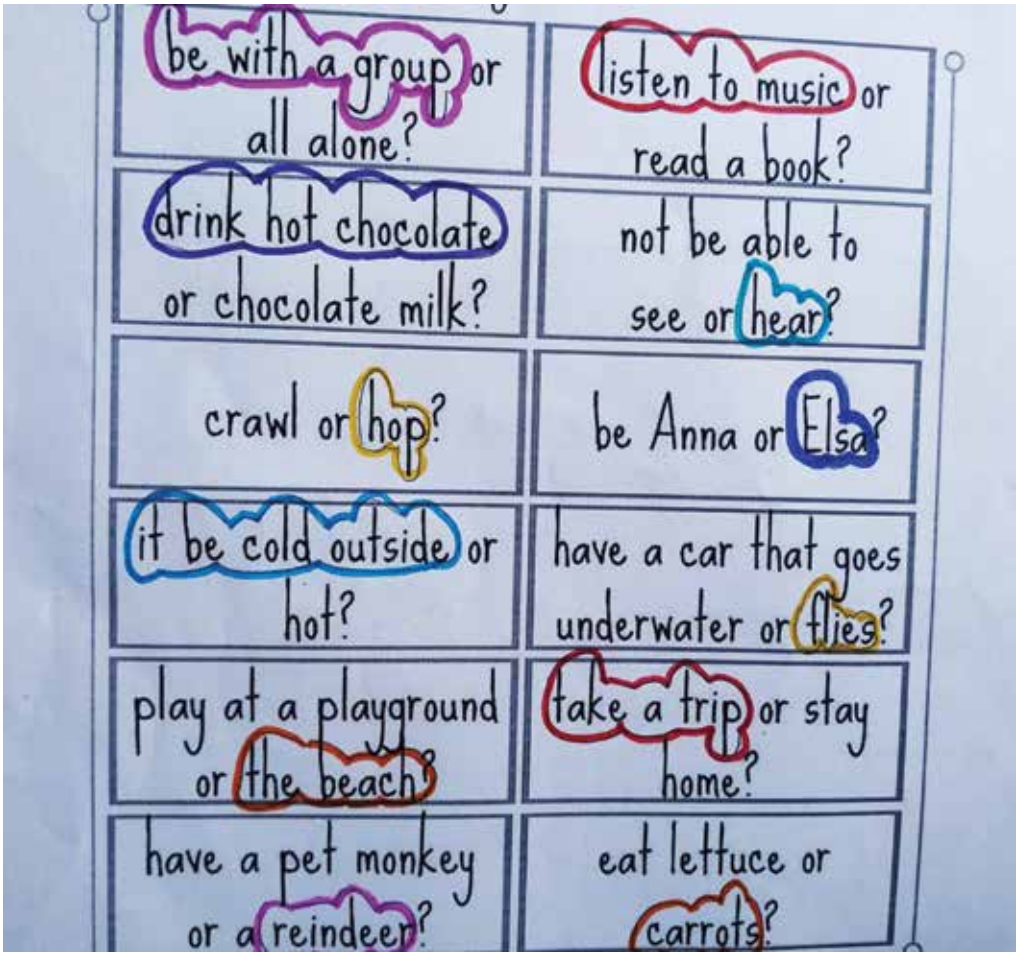

चित्र-2 : एक पूर्ण वर्कशीट जिसमें बच्चों ने कुछ सरल चुनाव किए।

हमने दो गतिविधियाँ कीं। सबसे पहले, मैंने अपने विद्यार्थियों से पूछा कि वे कौन-सा खेल खेलना चाहते हैं। कुछ विद्यार्थियों को डॉजबॉल खेलना था, जबकि अन्य फुटबॉल खेलना चाहते थे। मैंने उनसे कोई एक खेल चुनने को कहा, जिसे वे आपस में खेलना चाहते हैं। मुझे यह सुनिश्चित करना था कि कक्षा में सभी विद्यार्थी बोलें और सभी की बात सुनी जाए। मेरी मुख्य समस्या यह थी कि हमारे लोकतांत्रिक समाज में लिंग और अन्य प्रकार के भेदभाव का कोई स्थान नहीं है, यह दर्शाने के लिए की गई तमाम बातों और पहलों के बावजूद, मेरी लड़कियाँ, लड़कों की तरह मुखर नहीं थीं। हालाँकि, इस बार लड़कियों ने व्यापक चर्चा और मतदान के बाद डॉजबॉल खेलने की इच्छा व्यक्त की। विद्यार्थी तब यह तय करने में जुट गए कि कितनी टीमें होंगी और किस आधार पर उनका गठन होगा। यह सब निर्णय लेने की प्रक्रिया का हिस्सा था जिसे उन्होंने स्वतंत्र रूप से पूरा किया; इसमें मेरी कोई भूमिका नहीं थी।

इसके बाद हमने निर्णय लेने से सम्बन्धित एक वर्कशीट पूरी की जिसमें उन्हें दो विकल्पों में से एक को चुनना था। यह एक मज़ेदार अभ्यास था। उन्हें अपने फ़ैसले लेने थे और अपने द्वारा चुने विकल्प का औचित्य बताना था।

अगले दिन, मेरे एक विद्यार्थी ने निर्णय लेने की प्रक्रिया में पूरी कक्षा का नेतृत्व किया। मेरे कुछ विद्यार्थी डॉजबॉल खेलना चाहते थे, लेकिन इस विद्यार्थी ने पहल की और दो कॉलम बनाकर उनमें से एक में फुटबॉल खेलने के फ़ायदे और एक में नुक़सान लिखे। कक्षा ने इन बिन्दुओं पर विस्तार से चर्चा की और अन्ततः सभी ने फुटबॉल खेलना और अभ्यास करना चुना, क्योंकि उस विद्यार्थी ने उन्हें दो कॉलमों में उल्लिखित प्रत्येक बिन्दु के लिए तर्क दिए। विद्यार्थियों ने सीखा कि निर्णय लेने के लिए तर्क करना महत्त्वपूर्ण है और यह तब और आसान हो जाता है जब किसी के पास अपने निर्णयों के कारणों के बारे में स्पष्टता हो।

तनाव और चिन्ता का नियंत्रण

परिवर्तन और कठिनाइयाँ हर किसी के जीवन का, यहाँ तक कि बचपन का भी, हिस्सा होती हैं, ऐसे समय में तनाव और चिन्ता सामान्य प्रतिक्रियाएँ हैं। हम अक्सर मानते हैं कि तनाव और चिन्ता नकारात्मक परिस्थितियों से उत्पन्न होने वाली भयानक भावनाएँ हैं। हालाँकि, ख़ुशी के अवसरों (जैसे स्कूल की घटनाएँ, छुट्टियाँ या सामाजिक रुचियाँ) की प्रत्याशा भी कभी-कभी तनावपूर्ण हो सकती है। जब कुछ ऐसा होता है

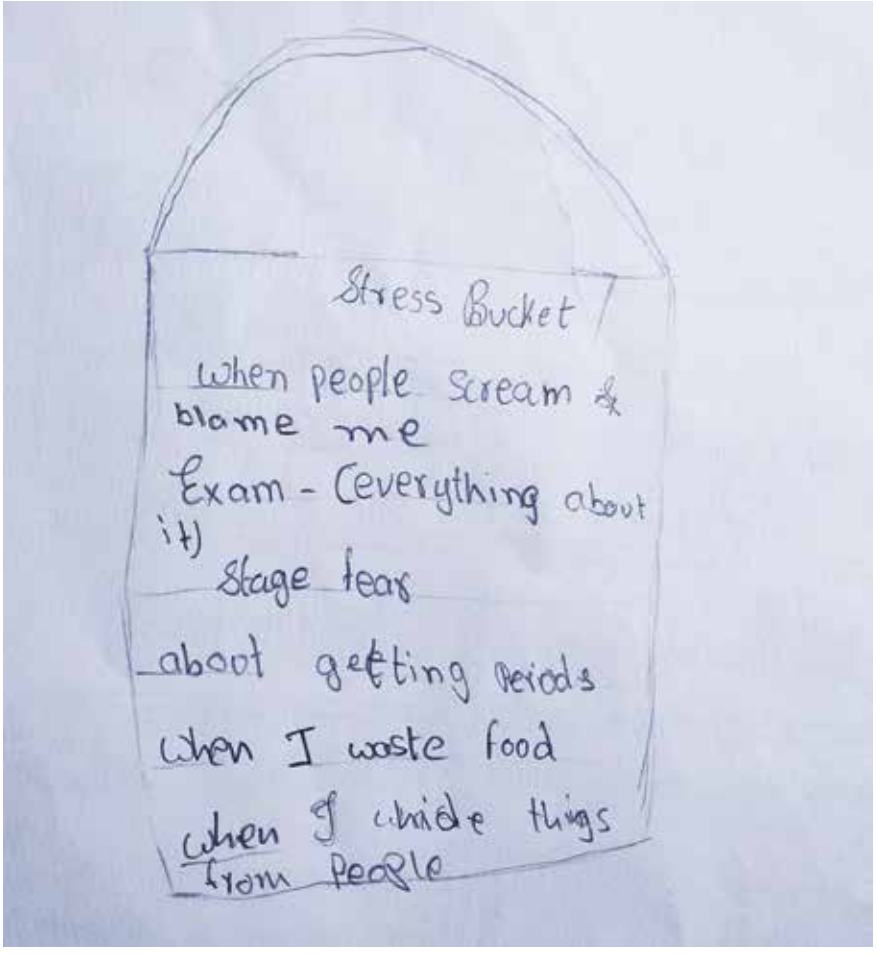

चित्र-3 : एक विद्यार्थी की तनाव की बाल्टी (स्ट्रेस बकेट)।

जिसके बारे में पूर्वानुमान लगाने या फिर जिसे संशोधित या संरक्षित करने की आवश्यकता होती है, तो बच्चे तनाव और चिन्ता का अनुभव करते हैं। जब उन्हें महत्त्वपूर्ण लगने वाली कोई चीज़, ख़तरे में होती है, तो वे चिन्तित हो जाते हैं। मेरे कई विद्यार्थी कक्षा के सामने या सभा में बोलते समय तनावग्रस्त और घबराए रहते हैं। इस घबराहट को दूर करने के लिए, मैंने उन्हें विभिन्न प्रकार की तनाव-निवारक गतिविधियों में शामिल किया।

जब आप तनाव और चिन्ता को कम करने के तरीक़ों के बारे में खोजते या पढ़ते हैं, तो सबसे पहली चीज़ जो सामने आती है, वह है ध्यान। हालाँकि, कभी-कभी, बच्चे के लिए ध्यान करना चुनौतीपूर्ण हो सकता है। एक विद्यार्थी के रूप में, मैं तनाव ख़त्म करने के लिए ध्यान करती थी। हालाँकि, मेरे विद्यार्थी बहुत सक्रिय हैं और ऐसी गतिविधियों को प्राथमिकता देते हैं, जिनमें गतिशीलता होती है। इसलिए, मैंने ध्यान के अलावा अन्य तरीक़ों की तलाश की। निम्नलिखित कुछ गतिविधियाँ हैं, जो मैंने अपनी कक्षा में करवाईं :

अपना तनाव दूर भगाओ

मैंने विद्यार्थियों से कहा कि वे एक पेज पर एक बड़ी बाल्टी बनाएँ और उसमें अपने द्वारा महसूस किए जाने वाले सारे तनावों को भर दें (यानी उसके अन्दर लिखें)। उदाहरण के लिए परीक्षा, माता-पिता का दबाव, मासिक धर्म आदि। अपनी तनाव की बाल्टी (स्ट्रेस बकेट) बनाने के बाद, उन्होंने ये कुछ गतिविधियाँ कीं।

चित्र बनाने की गतिविधि

मैंने विद्यार्थियों को प्रोत्साहित किया कि वे काले काग़ज़ पर रंगीन चॉक का उपयोग करके ऐसी चीज़ें बनाएँ जो उन्हें ख़ुश करती हों या हाल के दिनों में कुछ ऐसा हुआ हो जिससे उन्हें ख़ुशी मिली हो तो उसे बनाएँ। उन्हें इस अभ्यास के लिए पेन या पेंसिल की बजाय रंगीन चॉक का उपयोग करने में आनन्द आया। सफ़ेद चॉक की जगह रंगीन चॉक का इस्तेमाल करने से भी बच्चे की मनःस्थिति अच्छी हो सकती है।

डूडलिंग

डूडलिंग एक सुकून देने वाली गतिविधि है क्योंकि यह किसी संरचित या अपेक्षित परिणाम की माँग नहीं करती है। मैंने अपने विद्यार्थियों को स्केच पेन दिए और उनसे स्वतंत्र रूप से डूडल बनाने को कहा। मैंने उन्हें सुकून देने के लिए शान्त करने वाला संगीत भी बजाया। 25 मिनट की उस कक्षा में उनका दिमाग़ किसी भी तरह की चिन्ता से दूर, पूरी तरह से उस रचनात्मक गतिविधि में लगा हुआ था।

किसी पेड़ या पौधे से बात करना

हमारी कक्षा में मनी प्लांट लगा है। पहले तो मेरे विद्यार्थियों को लगा कि एक पौधे के साथ संवाद करना अजीब है और वे हँसे। लेकिन एक बार जब उन्हें पता चला कि इससे उन्हें तनाव दूर करने में मदद मिली, तो उन्होंने इसे गम्भीरता से लेना शुरू कर दिया। एक विद्यार्थी ने टिप्पणी की कि इस कार्य/ गतिविधि को करने के बाद उसे ऐसा लगा जैसे उसकी समस्याओं को सुनने के लिए कोई हमेशा उपलब्ध था।

आख़िर में मैं यही कहूँगी कि हालाँकि हमारे विद्यार्थियों के सामाजिक-भावनात्मक कल्याण के विषय में बहुत कुछ हासिल किया गया है, लेकिन अभी और बहुत कुछ किया जाना शेष है। सरल गतिविधियाँ और प्रयास उनकी सामाजिक और भावनात्मक ज़रूरतों को सार्थक रूप से पूरा कर सकते हैं। बतौर शिक्षक, हमें उनके व्यक्तित्व के इस आयाम के बारे में लगातार चर्चा करने की आवश्यकता है, ताकि उनकी शैक्षिक और पेशेवर सफलता के अवसरों में सुधार के साथ-साथ हम उनके सामाजिक और भावनात्मक कौशलों का भी पोषण करें और उन्हें सीखने का एक सुरक्षित और सकारात्मक माहौल प्रदान करें।

शालिनी सोलंकी ने अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलूरु, से शिक्षा में स्नातकोत्तर डिग्री प्राप्त की है। वे विजयवाड़ा, आन्ध्र प्रदेश के एक इंटरनेशनल स्कूल में अँग्रेज़ी विषय की कार्यक्रम सुगमकर्ता (प्रोग्राम फैसिलिटेटर) के रूप में कार्यरत हैं। अपने ख़ाली समय में उन्हें बाल साहित्य पढ़ना, योग करना और ऐतिहासिक फ़िल्में देखना अच्छा लगता है। उनसे *shalinisolanki70@gmail.com* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : यशोधरा कनेरिया **पुनरीक्षण :** भरत त्रिपाठी **कॉपी एडिटर** : अनुज उपाध्याय

कमरे में हाथी | सामाजिक और भावनात्मक शिक्षा (एसईएल) के अभाव वाला शिक्षण

शुभम रतूड़ी

लगभग तीन साल पहले, कोविड-19 की दूसरी लहर के उभरते भय के बीच, बच्चों की पढ़ाई को ज़ारी रखने के लिए विभिन्न क़दम उठाए गए थे। मैं उस समय कक्षा-4 में पढ़ने वाले 14 आदिवासी विद्यार्थियों के साथ काम कर रहा था। स्कूल दक्षिणी राजस्थान के एक छोटे-से गाँव की परिधि पर स्थित था। कक्षाएँ एक एकान्त मन्दिर में लगती थीं क्योंकि स्कूल महामारी के कारण बन्द थे।

राहुल जो सामान्यतः एक शान्त और ख़ुशमिज़ाज लड़का था, उस दिन आधी छुट्टी के दौरान अपने दोस्तों के साथ खेल रहा था। उनके बीच हो रही हल्की धक्का-मुक्की थोड़ी देर में ही हाथापाई में बदल गई। जब तक मैं बीच-बचाव के लिए पहुँचा, तब तक राहुल ने आयुष को पकड़कर उसका गला दबाना शुरू कर दिया था। एक वयस्क होने के बावजूद, मुझे इस 10 साल के बच्चे को दूसरे बच्चे का गला दबाने से रोकने के लिए काफ़ी मेहनत करनी पड़ी। यह देखना मेरी कल्पना से परे था कि राहुल जैसा शान्त और संयमित बच्चा भी इतने आक्रामक व्यवहार का प्रदर्शन कर सकता है।

स्कूल के बाद इस घटना को हेडमास्टर के साथ साझा किया गया। हेडमास्टर से जो कहानी मैंने सुनी उस कहानी ने मुझमें राहुल के प्रति सहानुभूति जगा दी। अपने माता-पिता के अलग होने के कारण वह अपनी दादी के साथ रह रहा था। राहुल भावनात्मक सहारे से वंचित था क्योंकि उसके पिता ने पुनर्विवाह कर लिया था। इससे पहले भी इस कोमल चित बच्चे ने घरेलू हिंसा के कई उदाहरण देखे थे और इन अनुभवों ने उसके व्यक्तित्व पर निश्चित ही एक स्थायी हानिकारक प्रभाव डाला होगा। यह स्पष्ट है कि परिस्थितियों ने बच्चे के मानसिक सृजन पर गहरा प्रभाव डाला था। जब किसी बच्चे की सामाजिक-भावनात्मक ख़ुशहाली पर ध्यान नहीं दिया जाता और उसका पोषण नहीं किया जाता, तब इसका असर उसके अकादमिक प्रदर्शन पर भी झलकता है। कहने की ज़रूरत नहीं है कि शिक्षकों के रूप में हम सीखने-सिखाने की प्रक्रिया के इस महत्त्वपूर्ण पहलू को पहचान कर एक अच्छी शुरुआत कर सकते हैं।

अकादमिक उत्कृष्टता का पीछा करना

एक ऐसे माहौल में जहाँ शिक्षण के मूल में अकादमिक क्षमता सर्वोपरि है, यह समझना मुश्किल नहीं है कि क्यों व्यापक शिक्षा के महत्त्वपूर्ण घटकों की अवहेलना की जाती है। हम अक्सर देखते हैं कि शिक्षकों द्वारा बेहतर अकादमिक प्रदर्शन कर रहे विद्यार्थियों को ही पाठ्येतर गतिविधियों में भी भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। यह प्रथा कई बच्चों को अपनी प्रतिभा निखारने के मौक़े और हक़, दोनों से वंचित करती है। कला, खेल, संगीत या नृत्य के लिए सहज प्रवृत्ति रखने वाले बच्चे अपने कौशल को प्रदर्शित करने और निखारने के हक़दार मौक़ों से वंचित रह जाते हैं क्योंकि उनका शैक्षणिक प्रदर्शन एक त्रुटिपूर्ण शिक्षा प्रणाली के मुताबिक़ सन्तोषजनक नहीं पाया जाता।

स्कूल समाज का ही एक उपसमूह है जहाँ अच्छा प्रदर्शन करने वाले विद्यार्थियों को सामाजिक संरचना के शिखर पर रखा जाता है और अच्छा प्रदर्शन न कर पाने वाले बच्चों को अक्सर शिक्षकों और तथाकथित अच्छा प्रदर्शन करने वाले विद्यार्थियों, दोनों द्वारा अपमानित, उपेक्षित और अनदेखा किया जाता है। यह प्रदर्शन-आधारित विभाजन कक्षा के भीतर उपसमूह बना देता है और तथाकथित ख़राब प्रदर्शन करने वाले विद्यार्थियों को अपने साथियों से सीखने के अवसर से वंचित कर देता है। विभिन्न अध्ययनों से यह पता चला है छोटी उम्र में ही विद्यार्थियों पर सार्वजनिक रूप से बुद्धिमान या सुस्त होने का ठप्पा लगाने का उनके समग्र व्यक्तित्व पर स्थायी हानिकारक प्रभाव पड़ता है, जो उन्हें आगे बढ़ने और अपनी वास्तविक क्षमता को खोजने से रोकने वाला एक बड़ा कारण बन सकता है।

एक शिक्षक के रूप में, मैं राहुल के प्रति पूर्वाग्रह से ग्रसित हो सकता था अगर मुझे उसके द्वारा इतनी कमसिन उम्र में झेले जा रहे भावनात्मक अभावों की जानकारी नहीं दी जाती। इस प्रसंग ने मुझे सिखाया कि किसी बच्चे के सच्चे और समग्र मूल्यांकन के लिए शिक्षक को उसकी पृष्ठभूमि और सह-पाठ्यक्रम रुचियों को हमेशा जगह देनी चाहिए। हम आज सचिन तेन्दुलकर को 'मास्टर ब्लास्टर' के रूप में पहचान नहीं रहे होते अगर उन्होंने वैमानिकी इंजीनियरिंग की होती और न ही हम एपीजे अब्दुल कलाम को 'मिसाइल मैन' के रूप में पहचानते अगर उन्होंने क्रिकेट करियर बनाने की कोशिश की होती। इसलिए किसी कक्षा के सभी बच्चों से बिल्कुल

अलग-अलग मानदण्डों पर समान अपेक्षाएँ रखना अगर बेतुका नहीं तो निश्चित रूप से अनुपयुक्त है।

परिस्थितियों को स्वीकार करना

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020 ऐसी समग्र शिक्षा की वक़ालत करती है जो एक समावेशी और बहुलतावादी समाज की स्थापना सुनिश्चित करती हो। लेकिन अक्सर, शिक्षक स्वयं आदिवासी और अन्य वंचित समुदायों के प्रति पूर्वाग्रहों से ग्रसित होते हैं और इस तथ्य को भूल जाते हैं कि इन समुदायों से आने वाले विद्यार्थी अपने समग्र विकास के लिए लगभग पूरी तरह से स्कूल पर निर्भर होते हैं।

इनमें से कई विद्यार्थी पोषण सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बहुत हद तक मध्याह्न भोजन (एमडीएम) पर निर्भर होते हैं। हम जानते हैं कि एमडीएम ने सरकारी स्कूलों में विद्यार्थियों का ठहराव सुनिश्चित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अनेक स्कूलों में बड़ी संख्या में ऐसे ग़ैर-नामांकित बच्चे भी हैं जिनके भाई-बहन पूर्व में स्कूल में औपचारिक रूप से नामांकित थे। ऐसे ही एक स्कूल में (शासकीय प्राथमिक विद्यालय, गुन्दी का भीलवाड़ा, कुम्भलगढ़), रजत नाम का नौ साल का लड़का है जो अपने दो भाई-बहनों (डेढ़ साल का भाई और तीन साल की बहन) को स्कूल ले आता है क्योंकि उसके माता-पिता काम पर जाते हुए इन बच्चों को उसकी देखभाल में छोड़ जाते हैं।

घर के हालात

रजत जैसे कई बच्चे हैं जिनकी घरेलू परिस्थितियाँ उनका बचपन उनसे छीन लेती हैं और समय से पहले वयस्क बनने के लिए मजबूर कर देती हैं। ग़रीबी का इस बच्चे पर गहरा प्रभाव पड़ा था। हालाँकि ग़रीबी से लड़ना शिक्षकों का दायित्व नहीं है लेकिन यह बेहद ज़रूरी है कि वे अपने विद्यार्थियों की दरिद्रता भरी सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि से जुड़ी चुनौतियों को समझें और स्वीकार करें, क्योंकि बच्चों के ये हालात उनकी ख़ुशहाली की राह में बड़ी बाधा बनते हैं। ऐसा हो सकता है जिस बच्चे ने अपना होमवर्क पूरा नहीं किया है वह ख़ाली पेट सोया हो और जो बच्चा समय पर स्कूल नहीं पहुँच पाया है उसे अपनी भेड़ों को खेतों में चराने ले जाना पड़ा हो।

जाति आधारित बहिष्कार

एक और महत्त्वपूर्ण सामाजिक बुराई जो कक्षाओं में अक्सर दिखती है वह है विद्यार्थियों के बीच जाति आधारित विभाजन। शिक्षक यदि सक्रिय रूप से हस्तक्षेप करें तो ऐसी अवांछित स्थितियों से प्रभावी ढंग से निपटा जा सकता है। हालाँकि, कुछ मामलों में, शिक्षक स्वयं कुछ ख़ास समुदायों से आने वाले बच्चों के प्रति पूर्वाग्रह रखते हैं। जाति आधारित भेदभावपूर्ण व्यवहार अभी भी देश के कई हिस्सों में, चाहे ग्रामीण हों या शहरी, देखने मिलता है। इस लड़ाई को जीतने के लिए, हमें ऐसे निष्पक्ष शिक्षकों की आवश्यकता होगी जो अपने विद्यार्थियों की समग्र ख़ुशहाली के बारे में चिन्तित रहें इस बात की परवाह किए बग़ैर कि बच्चे किस जाति/ धर्म/ पन्थ से आते हैं।

कक्षा में एसईएल

एसईएल-केन्द्रित पद्धति से पिछड़ रही कक्षा को विद्यार्थियों के व्यवहार का बारीक़ी से अवलोकन कर पहचाना जा सकता है। उदाहरण के लिए, भले ही किसी बच्चे के पास भाषा और गणित से जुड़ी ग्रेड-उपयुक्त योग्यताएँ हों, लेकिन उसका कमज़ोर सामाजिक-भावनात्मक अनुकूलन उसकी अभिव्यक्ति की क्षमताओं से परिलक्षित होता है। इनमें शामिल हैं अपने आप को खुलकर अभिव्यक्त करने, आत्म-जागरूक होने, टीम वर्क करने में सक्षम होने, साथियों की कठिनाइयों के प्रति संवेदनशील रवैया रखने और आस-पास के लोगों की पसन्द और नापसन्दगी के बारे में जागरूक रहकर अपने व्यवहार को समायोजित कर पाने जैसी क्षमताओं की कमी।

दुर्भाग्य से, इन पहलुओं पर ज़रूरी ध्यान नहीं दिया जाता। शिक्षकों के लिए यह ज़रूरी है कि वे इस तथ्य पर विचार करें और पहचानें कि ये क्षमताएँ शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के मूल में होनी चाहिए। एक समाज के तौर पर हमें यह समझना भी ज़रूरी है कि बच्चे का अच्छा अकादमिक प्रदर्शन उसके सामाजिक-भावनात्मक अनुकूलन को सुनिश्चित नहीं करता और बच्चों में समानुभूति, आत्म-जागरूकता और आत्म-नियमन का सामाजिक-भावनात्मक स्वास्थ्य पर मज़बूत असर पड़ता है।

शिक्षकों ने इन निष्कर्षों की पुष्टि की है हालाँकि वे यह भी बताते हैं कि उनका काफ़ी समय रिकॉर्डों के रखरखाव और बच्चों की कार्यपुस्तिकाओं की जाँच करने जैसे कार्यों में ख़र्च हो जाता है। इसलिए उन्हें अपने विद्यार्थियों के साथ गतिविधि-आधारित तरीक़े से काम करने के लिए पर्याप्त समय नहीं मिल पाता। शिक्षण का पेपर-आधारित तरीक़ा विद्यार्थियों की समग्र शिक्षा में मदद करने की बजाय हानि पहुँचाता है। इस पद्धति के माध्यम से हम बुनियादी साक्षरता एवं संख्या ज्ञान (एफ़एलएन) से सम्बन्धित क्षमताओं और उद्देश्यों को भले ही पूरा कर पाएँ लेकिन हमें समझना होगा की एफ़एलएन केवल सीखने का एक घटक है न कि समग्र शिक्षा। हमारे लिए एसईएल को शिक्षण योजनाओं और मूल्यांकन तकनीकों का हिस्सा बनाना सीखने की प्रक्रिया के लिए एक विकल्प नहीं बल्कि उसका अभिन्न अंग है।

21वीं सदी में एसईएल

एसईएल और कक्षा प्रक्रियाएँ साथ-साथ चलती हैं। आज की तेज़ी से भागती-दौड़ती दुनिया में, मात्र अच्छे ग्रेड और प्रमाणपत्र किसी व्यक्ति को बहुत दूर नहीं ले जाते। टीमों में काम करने, खुलकर व प्रभावी ढंग से अपनी राय को व्यक्त करने और रचनात्मक समाधान देने वाले विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण को विकसित करने की क्षमताएँ विकास और सफलता के लिए अत्यावश्यक हैं। ऐसे गुण सिर्फ़ प्रमाणपत्र और अच्छे ग्रेड द्वारा सत्यापित नहीं किए जा सकते; उन्हें किसी व्यक्ति द्वारा दुनिया के तौर-तरीक़ों के साथ तालमेल बिठा पाने के लिए हासिल करना पड़ता है। किसी विषय का अकादमिक ज्ञान जीवन के विभिन्न चरणों में हासिल किया जा सकता है लेकिन संचार, रचनात्मक सोच, सहकार्य और समस्या-समाधान जैसी आन्तरिक क्षमताओं को सीखने के शुरुआती चरणों से ही पोषित करना आवश्यक है। दुख की बात है कि सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली न सिर्फ़ मानव विकास के इन महत्त्वपूर्ण पहलुओं से वंचित है, बल्कि ऐसा लगता है कि उनसे अनजान भी है।

हमारी कक्षाओं को सीखने के समृद्ध स्थानों में परिवर्तित किया जा सकता है बशर्ते शिक्षक एसईएल को कक्षा की प्रक्रियाओं के एक महत्त्वपूर्ण पहलू के रूप में स्वीकार करें। यह बोध हमारी कक्षाओं को हमारी छोटी उम्र के विद्यार्थियों के लिए सीखने के प्रभावी और अनुकूल स्थानों के रूप में रूपान्तरित करने की पूरी प्रक्रिया को शुरू करने के लिए पर्याप्त होगा।

* बच्चों की पहचान को सुरक्षित रखने के लिए नाम बदल दिए गए हैं।

संक्षेप में

आज शिक्षा के क्षेत्र में काम कर रहे लोग शिक्षा की बहाली करने के तरीक़ों की तलाश में ख़ुद को डूबा हुआ पाते हैं। लेकिन इस तलाश के साथ समस्या यह है कि यह सिर्फ़ अकादमिक उपलब्धि तक सीमित रह सकती है और इसमें भावनात्मक विकास और सीखने के पहलुओं की उपेक्षा हो सकती है, क्योंकि ऐसी प्रक्रिया में मानवीय मूल्यों का ठोस आधार नहीं होगा और वह अपने आप को सतही अकादमिक दृष्टिकोण तक सीमित रखेगी। इसके अलावा, आज के पेशेवरों के लिए आवश्यक कौशल सिर्फ़ अकादमिक दृष्टिकोण के माध्यम से नहीं सिखाए जा सकते, क्योंकि इन्हें सहकार्य और सहयोग, सहानुभूति और समानुभूति के कौशलों को हासिल करने और निखारने वाले अनुकूल वातावरण में ख़ुद को तल्लीन करके हासिल और विकसित किया जाता है। और यह सब सामाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से हासिल होता है जिसके लिए हमारे विद्यार्थियों को उपयुक्त रूप से तैयार नहीं किया जा रहा। शिक्षण समुदाय को एसईएल के बारे में संवेदनशील बनाना हमारी शिक्षा प्रणाली का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए ताकि हम न केवल भविष्य के सक्षम पेशेवर लोग तैयार कर पाएँ बल्कि हमारे समाज के लिए दयालु, जागरूक और संवेदनशील नागरिक भी तैयार करें।

References

Multiple Intelligences, Howard Gardner

Divasvapna, Gijubhai Badheka

National Curriculum Framework (NCF) 2005

National Education Policy (NEP) 2020

Why Social and Emotional Learning Is Essential for Students https://www.edutopia.org/blog/why-sel-essential-for-students-weissberg-durlak-domitrovich-gullotta

शुभम रतूड़ी राजस्थान के राजसमन्द जिले के कुम्भलगढ़ ब्लॉक में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन में रिसोर्स पर्सन हैं। वे शिक्षकों और युवाओं के साथ सामाजिक मुद्दों पर उनके नज़रियों पर और सामग्री-आधारित विषयों पर काम करने के अलावा, बच्चों द्वारा दूसरी भाषाएँ, विशेष रूप से अँग्रेज़ी भाषा, सीखने की प्रक्रियाओं में सक्रिय रूप शामिल रहते हैं। उनसे *shubham.raturi@azimpremjifoundation.org* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : सन्दीप दुबे **पुनरीक्षण :** भरत त्रिपाठी **कॉपी एडिटर :** अनुज उपाध्याय

बच्चों को सुनने का महत्त्व

सुकीर्ति लखटकिया

प्राथमिक विद्यालय की किसी भी शिक्षिका के लिए "मैम! मैम! मैम!" की चहचहाटों को हर दिन सुनना एक आम बात है। मेरे निजी अनुभव में बच्चे आपके आस-पास तब तक उछल-कूद करते रहेंगे, शोर करते रहेंगे जब तक आप उनकी बातों को सुन नहीं लेते। उनकी बात आमतौर पर इतनी ज़रूरी नहीं होती जितनी प्रतीत होती है, जैसे कि, "मैम, क्या मैं पानी पी लूँ?" या "मैम क्या मैं टॉयलेट चली जाऊँ?" या फिर उत्साह से भरी हुई कोई बात जैसे, "मैम, आज मैं लंच में पोहा लाई हूँ!" लेकिन इस तरह की कोई भी बात इतनी अति आवश्यकता के साथ कही जाती है कि कोई यह सोच सकता है कि बच्चा कोई बहुत बड़ा राज़ बताने वाला है।

सुनाई देने (hearing) और सुनने (listening) के बीच का अन्तर

यह बात हम आसानी से भूल सकते हैं कि सुनाई देने और सुनने के बीच अन्तर होता है। सुनाई देना पूरी तरह से हमारे शरीर की एक शारीरिक प्रतिक्रिया है। हमारे कानों की संरचना हमारे आस-पास की आवाज़ों को दर्ज़ करने के लिए हुई है। वहीं दूसरी तरफ़ सुनना एक संज्ञानात्मक प्रतिक्रिया है। दूसरे शब्दों में कहें तो किसी को सुनने का अर्थ है कि हम अपना ध्यान इस बात पर दे रहे हैं कि क्या कहा जा रहा है और कैसे कहा जा रहा है, ताकि हम बोलने वाले को जवाब दे सकें। इन अन्तर्विरोधों को ध्यान में रखते हुए बच्चों की बातें सुनाई देना और बच्चों को सुनना दो अलग-अलग बातें हैं।

स्कूल के अपने पाँच महीनों के दौरान मैं कक्षा-1 की शिक्षिका रही हूँ। और मेरी सीखी हुई चीज़ों में से एक बेहद महत्त्वपूर्ण चीज़ है बच्चों की बातों को सुनने का महत्त्व। बहुत से बच्चे, विशेष रूप से सरकारी स्कूलों के, जो निम्न-आय वाले वर्ग से आते हैं, ऐसे श्रोता को खोजने में विफल रहते हैं जो उनके विचारों, योजनाओं, कल्पनाओं, भय और चिन्ताओं को सुनने के लिए इच्छुक हो या उसके पास सुनने का समय हो। हो सकता है इन बच्चों के माता-पिता को कई घण्टों तक काम करना पड़ता हो, भाई-बहन (अगर कोई हो) या तो बहुत बड़े या बहुत छोटे हों और विस्तृत परिवार के सदस्य बहुत दूर रह रहे हों। और इसके ऊपर, एक औसत स्कूल शिक्षक के पास बच्चों की उन बातों पर ख़र्च करने के लिए कम धैर्य और ऊर्जा होती है जिसे वे बच्चों की बेमतलब बकवास मानते हैं।

इस सारी उपेक्षा के बीच फँसे बच्चे बड़ी जल्दी ऐसे किसी भी व्यक्ति की पहचान कर लेते हैं और उससे जुड़ जाते हैं, जो उनको सुनने के लिए समय निकालता है। असल में, कभी-कभी किसी वयस्क से बात करने से अधिक दिलचस्प एक बच्चे से बातचीत करना हो सकता है। ऐसा इसलिए क्योंकि उनकी अनपेक्षित प्रतिक्रियाएँ, सोचने का अपरम्परागत तरीक़ा और उनकी अब तक पक्की नहीं हुईं मान्यताएँ हमें हैरान कर सकती हैं।

एक श्रोता के रूप में शिक्षक

स्कूल में एक शिक्षक के रूप में, बच्चों की मौखिक अभिव्यक्ति के लिए सही अवसर तैयार करना महत्त्वपूर्ण हो जाता है। प्राथमिक कक्षाओं के लिए एनसीईआरटी द्वारा दिया गया सीखने का एक आवर्तक परिणाम है, 'किसी घटना का विस्तार से वर्णन करने की क्षमता को विकसित करना, किसी दी गई काल्पनिक स्थिति का जवाब देने और अपने दैनिक अनुभवों को साझा करने में सक्षम होना।' सीखने के ये परिणाम छोटी उम्र से ही बच्चों में सामाजिक-भावनात्मक विकास से जुड़े होते हैं। इन सभी के लिए, एक सक्रिय श्रोता के होने की आवश्यकता है जो साझा की गई जानकारी को आत्मसात करता है और इसे संसाधित करता है और आगे की सोच को प्रोत्साहित करने के लिए रचनात्मक प्रतिक्रिया देता है। स्कूल का शिक्षक इसके लिए आदर्श व्यक्ति होता है। यह इसलिए भी मददगार होगा क्योंकि शिक्षक किसी बच्चे द्वारा कही जा रही बातों में छिपे हुए अर्थ को समझ सकता है और इन बातों के माध्यम से उसके बारे में और अधिक जान सकता है।

जिए हुए अनुभव

एक दिन स्कूल में, जैसे ही मैंने कक्षा में प्रवेश किया, रूबी (उम्र आठ साल) मेरे पास यह बताने के लिए दौड़ती हुई आई कि पिछली रात उसे एक बिच्छू ने काट लिया था। मैं चौंक गई और मैंने उसे और बताने के लिए पूछा कि, "यह कैसे हुआ? तुम ठीक हो? तुम्हारे मम्मी-पापा ने क्या किया?" उसने कहा, "मैम, मम्मा-पापा ने तो कुछ नहीं किया, मैंने ख़ुद से बोरोप्लस लगा लिया।" यह सुनकर मुझे ख़ुशी के साथ ही राहत महसूस

हुई क्योंकि इसका मतलब यह था कि यह कोई असली बिच्छू नहीं हो सकता था।

सात साल का गणेश एक दिन असामान्य रूप से शान्त था। जब मैंने उससे पूछा तो उसने कहा, "पापा की साइकिल चोरी हो गई। हम मंगोड़ी खा रहे थे और कोई आया और साइकिल ले गया।" अगले कुछ दिन मैं उससे रोज़ पूछती कि क्या साइकिल मिल गई है और वह कहता कि नहीं, लेकिन वह कक्षा में आते और बाहर जाते समय मुस्कराते हुए मेरा अभिवादन करने लगा।

पाँच साल का हरिओम जिसे सब प्यार से डुग्गु कहते हैं, हमेशा आँखों में आँसू लिए स्कूल आया करता था और उसका पहला सवाल हमेशा यही होता था, "मैम, छुट्टी कब होगी? हमरे भईया कब आएँगे?" वह स्कूल में एकदम दुखी रहता था और इसमें कोई हैरानी नहीं थी कि उसे हर दिन स्कूल आना बेहद नापसन्द था। मुझे एहसास हुआ कि इससे उसकी सोचने और सीखने की क्षमता भी प्रभावित हो रही थी। मुझे पता चला कि हरिओम अनाथ था और कुछ हफ़्तों के अवलोकन के बाद, मुझे यह भी सन्देह हुआ कि उसे सीखने में भी कठिनाई होती है। लेकिन मैंने उसके साथ एक रिश्ता कायम करने की

चित्र-1 : मेरे द्वारा बनाया गया हरिओम का चित्र, उसकी स्लेट पर।

चित्र-2 : हरिओम द्वारा बनाया गया मेरा यानी चोटी मैम का चित्र।

नींव तैयार की जो उसकी बातें सुनने, उसके साथ दोस्ताना बातचीत करने और एक ऐसा भयमुक्त वातावरण बनाने से तैयार हुई, जिसमें कि वह अपनी भावनाएँ व्यक्त कर सके। उसने मुझे छोटी मैम का नाम भी दिया। जब उसके आँसू कम हो गए और उसकी मुस्कान अधिक दिखाई देने लगी, तो उसने सीखने की इच्छा व्यक्त करना शुरू कर दिया। मैंने उसकी स्लेट पर उसका एक चित्र (**चित्र-1**) बनाया और उस पर उसका नाम लिख दिया बदले में उसने मेरा चित्र बनाया (**चित्र-2**)। जब मैंने उससे पूछा, "अच्छा, ये मैं हूँ क्या? मेरे बाल कहाँ हैं? और मेरे हाथ और पैर?" उसने तुरन्त अपनी ड्राइंग में इन सभी विवरणों को भी जोड़ दिया।

बच्चे बेझिझक मुझे बता सकते हैं कि वे असल में क्या महसूस करते हैं। कक्षा की गतिविधियों के दौरान कुछ ऐसे मौक़े आए हैं जब बच्चों ने मुझे दो टूक कहा है कि, "मैम, यह मज़ेदार नहीं है।" भले ही यह सुनकर एक क्षण के लिए मैं निराश होती हूँ लेकिन फिर मैं सोचती हूँ कि उनकी यह स्पष्टता उनके सहज महसूस करने का एक संकेत है।

बटरफ्लाई टूल के साथ बच्चों द्वारा कहानी कहना

मेरी कक्षा में जो सबसे उत्कृष्ट संवाद हुए हैं उनमें से एक का सम्बन्ध हमारे 'बटरफ्लाई टूल' से है। शुरुआती स्तर की गणित में, जहाँ गणना जैसी अवधारणाएँ होती हैं और संख्याओं की

मात्रात्मक समझ विकसित करनी होती है, गणितमाला के उपयोग को बढ़ावा दिया जाता है। यह ऐसी माला होती है जिसमें 10-10 मोतियों के सेट बारी-बारी से दो अलग रंगों में होते हैं। प्राथमिक कक्षाओं के बच्चों के लिए, गणितमाला में आसानी से आगे-पीछे जाने के लिए सुझाए गए तरीक़ों में से एक है, एक मज़ेदार सन्दर्भ बनाना। जैसे कि गणितमाला हमारा बग़ीचा है, मोती हैं फूल और एक मुड़ा हुआ काग़ज़ का टुकड़ा हमारी तितली के रूप में काम करता है, जो हमारे बग़ीचे में घूमती है। मैंने अपनी कक्षा के लिए बहुत सारी तितलियाँ कई-कई बार बनाईं क्योंकि उन्हें छोटे बच्चे इधर-उधर कर देते थे/ खो देते थे/ फाड़ देते थे/ ले लेते थे।

एक दिन जब मैं कक्षा में पहुँची और देखा कि हमारी तितली फिर से ग़ायब है, तो मैंने कुछ ज्यादा ही बढ़-चढ़कर झुँझलाते हुए कहा, "ओहो! हमारी तितली तो बहुत दिनों से नहीं दिखी है, पता नहीं कहाँ उड़ जाती है बार-बार! क्या पता वो कहीं गिर गई हो या उसे चोट लग गई हो?" इसके बाद बच्चों ने इस तरह के जवाब दिए :

वैशाली : मैम, तितली शायद अपने गाँव गई है।

अनुज : हाँ! इसलिए इतना टाइम लग रहा है वापस आने में।

रूबी : मैम, उसका घर बन रहा है।

मैं : अच्छा! ये बात है क्या? बात तो सही है, घर बनाने में टाइम तो लगता है। उसका घर ईंटों से बनता है क्या?

ऋषि : नहीं मैम, तितली फूलों में रहती है, उसका घर फूलों से बन रहा है।

मुझे यह सारी बातचीत बहुत ही दिलचस्प लगी। बच्चे ख़ुद से ही कल्पना करते हुए एक कहानी गढ़ रहे थे और एक-दूसरे की कल्पनाओं की बुनियाद पर कहानी को आगे बढ़ा रहे थे। कभी-कभी, मैं अपनी खोई हुई तितली के बारे में सच में निराशा व्यक्त करती हूँ और एक-दो बच्चे जल्दी से काग़ज़ मोड़कर उसे कुछ इस तरह की बात कहते हुए मुझे थमा देते हैं : "मैम, ये लो, हमारी तितली की बहन आ गई।" जब हम गणितमाला पर प्रश्न हल करते हैं तो मैं बच्चों को बीच-बीच में हमारे सन्दर्भ की याद दिलाती रहती हूँ। उदाहरण के लिए, अगर काग़ज़ गिर जाता है, या अगर कोई बच्चा काग़ज़ को इतना कसकर पकड़ता है कि वह फट सकता है, तो मैं उन्हें

चित्र-3 : बटरफ्लाई टूल के साथ गणितमाला पर काम करते बच्चे।

झूठी चेतावनी में कहती हूँ, “अरे अरे! हमारी तितली बहुत नाज़ुक है, उसको ध्यान से पकड़ो।” एक दिन अनुज ने कहा, “मैम, तितली को बुखार है, वो बहुत गरम हो रही है।”

हरिओम के साथ, कहानी में इस निरन्तरता ने काम किया है। वह संख्या-पूर्व अवधारणा के चरण में है और मनमाने ढंग से गिनते समय एक साथ कई मोतियों को खिसका देता है। मैंने उसे कहा, “हरिओम, तितली अभी बहुत छोटी है, वो इतने सारे फूल एक साथ नहीं खा सकती है, सिर्फ़ एक-एक मोती खिसकाओ नहीं तो उसके गले में अटक जाएगा!” उसने मुझे पूरे ध्यान से देखा और मेरी बात समझ गया। उसने कुछ देर के लिए इस बात का पालन किया यानी एक बार में एक ही मोती खिसकाता रहा। फिर अचानक ही वह पहले की तरह ही बहुत सारे मोतियों को एक साथ खिसकाने लगा और बहुत उत्साहित होकर बोला, “मैम, तितली को भूख लगी है! वो खा लेगी!”

तार्किक सोच की ओर एक शुरुआती प्रयास

बच्चों को सुनने से हम समृद्ध संवादों की ओर बढ़ते है जिसमें सीखना दोनों तरफ़ से होता है। मेरे कुछ अनुभवों में, मैंने सीखा है कि जितना हम सोचते है बच्चे उससे कहीं अधिक जानते हैं। एक दिन हम कक्षा में हिन्दी अक्षर ‘र’ के लिए एक वर्ड वेब (शब्दों का जाल) बना रहे थे और उसमें मैंने एक जगह ‘र से रुपए’ लिखा था। वेब पूरा बनाने के बाद मैंने अल्तमश (उम्र सात साल) को यह देखने के लिए आगे आने को कहा कि वह अक्षर र से क्या पहचान पाता है। उसने ‘र से रुपए’ पढ़ा। उसके बाद जो बातचीत हुई वह आगे दी गई है। अभय (उम्र छह साल) भी पास में खड़ा होकर हमें सुन रहा था।

अल्तमश : मैम, डॉलर भी होता है।

मैं : क्या होता है ये डॉलर?

अल्तमश : मैम, पापा ने बताया कि एक डॉलर हज़ार रुपए का होता है।

मैं : और ये डॉलर कहाँ चलता है?

अल्तमश : दिल्ली और मुम्बई!

मैं : अल्तमश, मेरे ख़्याल से ये अमरीका में चलता है, आपने ये नाम पहले सुना है? कहाँ है अमरीका?

अभय : मैम, अमरीका नहीं, अमेरिका होता है!

स्कूल में शिक्षक द्वारा बच्चों को सक्रिय रूप से सुनना एक ऐसी सम्भावना प्रदान करता है जो बच्चों की चिन्तन प्रक्रिया को इस तरह से प्रभावित कर सकती है, जो शायद स्कूली

चित्र-4 : अल्तमश ब्लैकबोर्ड के सामने खड़ा है जिस पर अक्षर र के लिए एक वर्ड वेब बना हुआ है। बाईं तरफ़ सबसे ऊपर ‘रुपए’ लिखा हुआ दिख रहा है।

शिक्षा के पारम्परिक साधन, जैसे पाठ्यपुस्तक नहीं कर सकते। अमूर्त गणितीय प्रश्नों की तुलना में रोज़मर्रा के सन्दर्भों के बारे में बातचीत के माध्यम से बच्चों को तार्किक सोच की तरफ़ प्रेरित करना आसान है। पर सबसे बड़ी बात है कि, बच्चों को सुनना उन्हें यह दिखाता है कि आप उनकी परवाह करते हैं, पूरे तन-मन से उनके लिए उपस्थित हैं और उनको इतना सम्मान देते हैं कि उनके लिए अपना समय व ऊर्जा दे सकते हैं। आख़िरकार, एक वयस्क जब दूसरे वयस्क को ध्यान से सुनता है तो वह सम्मान की भावना को ही सूचित करता है। बच्चे भी उतने ही सम्मान के अधिकारी हैं जितना कोई और। इससे बच्चों में सुरक्षा और अपनेपन की भावना भी बढ़ती है जिससे उनके भीतर ख़ुशहाली की भावना और बढ़ने में मदद मिलती है, जो उनके सीखने को बेहतर बनाती है और इससे स्कूली शिक्षा जीवन के कौशल सीखने की जगह बन जाती है।

* बच्चों की पहचान सुरक्षित रखने के लिए नाम बदल दिए गए हैं।

सुकीर्ति लखटकिया अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन, सागर, मध्य प्रदेश में एसोसिएट हैं। उन्होंने शिव नाडार विश्वविद्यालय, दिल्ली-एनसीआर से अँग्रेज़ी साहित्य में मास्टर्स की पढ़ाई पूरी की है। उन्हें पढ़ना, फ़िल्में देखना, लिखना और पक्षियों को देखना रोचक लगता है। उनसे *sukriti.lakhtakia@azimpremjifoundation.org* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : सुनन्दा दुबे **पुनरीक्षण :** भरत त्रिपाठी **कॉपी एडिटर :** अनुज उपाध्याय

आनन्दमय माहौल बनाने के लिए शिक्षक विद्यार्थियों के साथ मज़ेदार गतिविधियों जैसे नृत्य (डांस), एक्शन प्ले में शामिल होते हैं। हम विद्यार्थियों से गले लगकर, हाई-फाईव्स देकर या अभिवादन के किसी ऐसे तरीक़े से मिलते हैं जो उन्होंने उन्हें दिए गए विकल्पों में से चुना था। हम यह समझने की कोशिश करते हैं कि उनका दिन कैसा बीत रहा है, वे कैसा महसूस कर रहे हैं और कुछ भावनाओं को वे क्यों महसूस कर रहे हैं आदि।

- फ़रज़ाना बेगम, सामाजिक-भावनात्मक शिक्षा को केन्द्र में रखना, पेज 37

शिक्षकों की फ़िक्र और देखरेख द्वारा एक स्कूल का रुपान्तरण

सुनीता सुरेशराव

बच्चों को कुछ भी सीखने में समर्थ बनाने के लिए और उनके सम्पूर्ण विकास में सहयोग देने के लिए सामाजिक और भावनात्मक रूप से सहायक व प्रेरक वातावरण सबसे पहली ज़रूरत होती है। इस लेख में मैं, कन्नड़ा बॉयज़ स्कूल (केबीएस), विजयपुरा के बच्चों के अनुभवों और बेहद कठिन स्थितियों के बीच उन्हें भावनात्मक सहारा देने के लिए उनके शिक्षकों के रचनात्मक व सकारात्मक प्रयासों के बारे में बताना चाहूँगी। आपराधिक मामले, शराब की लत, किसी एक अभिभावक की मृत्यु और परित्याग उनके कुछ ऐसे मसले हैं जो उन पर गहरे भावनात्मक घाव छोड़ जाते हैं। इस वजह से उनके शिक्षकों को सजग रहने की ज़रूरत होती है ताकि वे उन्हें भावनात्मक सहारा दिए जाने की ज़रूरत को पहचान सकें और सहारा दे सकें। यह भावनात्मक सहारा न केवल उनकी पढ़ाई के लिए ज़रूरी है बल्कि इसलिए भी कि वे परिपक्व व आत्मनिर्भर वयस्क बन सकें।

बच्चों का सन्दर्भ और उनकी पृष्ठभूमि

विजयपुर (पहले बीजापुर के नाम से जाना जाता था) के अधिकांश लोग खेतीबाड़ी पर निर्भर हैं। लेकिन, समय पर वर्षा के अभाव की वजह से उन्हें रोज़ी-रोटी की तलाश में दूसरे ज़िलों में बसना पड़ा है। दूसरे राज्यों से रोज़ी-रोटी की तलाश में इस शहर आए लोग छोटे-मोटे काम करके जी रहे हैं। फलस्वरूप, रेलवे स्टेशन के पास के एक स्कूल में शहर के अलग-अलग हिस्सों से बच्चे आते हैं। इनमें से बहुत-से बच्चे माता-पिता द्वारा उपेक्षित किए जाने के साथ-साथ एक ही अभिभावक द्वारा पाले जा रहे हैं। बच्चों की देखभाल से कुछ घण्टों की आज़ादी पाने से लेकर उस समय का उपयोग दैनिक मज़दूरी के लिए करने तक, अभिभावकों के पास बच्चों को स्कूल भेजने के बहुत-से कारण हैं। इनमें से एक सच यह भी है कि स्कूल में होने से उन्हें एक वक़्त का खाना (मध्याह्न भोजन योजना के तहत) मिलना तो तय हो ही जाता है।

पहले से ही आर्थिक कठिनाइयों से जूझते इन समुदायों को महामारी ने गहरी चोट पहुँचाई है। इस स्कूल में आने वाले अलग-अलग परिवारों के दो बच्चों ने कोविड-19 महामारी में अपनी माँओं को खो दिया। एक बच्चे के परिवार में तो चार बच्चे हैं जो 1-5वीं तक की कक्षाओं में पढ़ते हैं। उनका पिता, जो दैनिक मज़दूर है, हर रात देर से नशे में धुत घर आता है। उसे अपने बच्चों की कतई परवाह नहीं है। बच्चे बहुत छोटे हैं। उन्हें खाना खिलाने, नहलाने और कपड़े पहनाने के लिए किसी की मदद की ज़रूरत पड़ती है। वे फटे-पुराने मैले कपड़े पहनकर बिना नाश्ता किए ही स्कूल आते हैं। महामारी के समय हालत और भी बदतर थे, क्योंकि उनके पिता के पास कोई काम नहीं था। चूँकि स्कूल भी बन्द थे तो उन्हें दिन में एक भी वक़्त का खाना नहीं मिलता था। दूसरे बच्चे की एक प्री-स्कूल उम्र की बहन है। हालाँकि उसके पिता उन दोनों का ख़्याल रखते हैं लेकिन उस बच्चे को अपनी छोटी बहन को साथ लेकर आना पड़ता है और उसे सारा दिन स्कूल में अपने साथ ही रखना पड़ता है।

इस तरह की उपेक्षा, उचित देखभाल और सहारे के अभाव की वजह से, बच्चे स्कूल में कुछ नहीं सीख पाते। आजीविका का छूट जाना, शराब की लत और एकल अभिभावक द्वारा पालन कुछ ऐसी स्थितियाँ हैं जिनका बच्चों पर बहुत गहरा असर पड़ता है।

शिक्षकों के प्रयास

स्कूल में कक्षा 1-7 तक 81 बच्चे हैं और ज़्यादातर बच्चे एक जैसे हालातों से जूझ रहे है। पर फिर भी, स्कूल के तीन शिक्षकों ने इस स्थिति से निबटने के लिए अपने ही तरीक़े निकाल लिए हैं। उन सबको बच्चों की फ़िक्र व परवाह है और इसलिए उन्होंने सबसे पहले अपने आप को कक्षा के बच्चों की पृष्ठभूमियों से अवगत किया। तीन में से एक शिक्षक नली-कली कक्षाओं के लिए, एक कक्षा-4 और 5 के लिए और एक कक्षा-6 और 7 के लिए, बच्चों को सिखाने और उनके सम्पूर्ण विकास को मद्देनज़र रखते हुए एक टीम की तरह दिन-रात मेहनत करते रहते हैं। पहले क़दम के तौर पर, जिन परिवारों में नौकरी के अभाव और मृत्यु की वजह से ग़रीबी पनपी थी, उनके लिए उन्होंने राशन की व्यवस्था की।

उन्होंने स्कूल में व बच्चों को पढ़ाने के तरीक़ों में कुछ बदलाव लाने की दिशा में भी क़दम उठाए। उदाहरण के तौर पर, एक परिवार के दो बच्चे स्कूल आते हैं, उनमें से एक कक्षा-3 में पढ़ता है और दूसरा चार साल का है जिसकी देखभाल पूरे समय स्कूल के दूसरे कर्मचारी करते हैं। हालाँकि इस परिवार की प्रशंसा की जा सकती है कि यह अपने दोनों बच्चों को

नियम से स्कूल भेजता है, लेकिन दोनों बच्चों का एक साथ आना एक समस्या बन जाता है। दूसरे मामले में, दो बच्चे, जिनकी माँ गुज़र चुकी है, बिना नाश्ता किए ही स्कूल आ जाते थे। वे अस्त-व्यस्त से आते थे और उन्हें स्कूल अनुशासन का कुछ पता नहीं था। ऐसे में बड़े बच्चों को, शिक्षक द्वारा दिए गए तेल, कंघी और शीशे से, उन दोनों के बालों में तेल लगाकर उन्हें तैयार करने की ज़िम्मेदारी दे दी गई। स्कूल द्वारा दी गई यूनिफॉर्म से बच्चों को बहुत मदद मिली क्योंकि उनके पास पहनने के लिए ठीक-ठाक कपड़े भी नहीं थे।

अपनी सारी निजी समस्याओं के बावजूद, बच्चों ने इस साल पिछली दो कक्षाओं के सीखने के परिणामों को सफलतापूर्वक हासिल कर लिया है। ऐसा सिर्फ़ शिक्षकों के लगातार उत्साहवर्धन की वजह से ही सम्भव हो पाया है। चूँकि हर बच्चे को 'हर एक की क्षमता अनुसार' वाले तरीक़े से पढ़ाया जा रहा है, ऐसा देखने में आया है कि कक्षा के अधिकतर बच्चे तेज़ी से सीख पा रहे हैं। और चूँकि तीनों शिक्षक सीखने के नवीनीकृत परिणामों से परिचित हैं, पूरक पद्धतियों, जैसे कि पढ़ाने के शिष्टाचार, को भी कक्षा की प्रक्रियाओं में अपनाया जा सकता है। शिक्षक पढ़ने-पढ़ाने के उपकरण (TLM) भी बनाते हैं व सीखने को प्रभावशाली बनाने के लिए उनका इस्तेमाल करते हैं (**चित्र 1-3**)।

भावनात्मक सहारे को सुनिश्चित करना

नली-कली कक्षाओं में पढ़ने वाले वे तीन बच्चे, जिनकी माँ गुज़र चुकी थी, शुरू-शुरू में यदि शिक्षक उनकी पढ़ाई को लेकर ज़रा-सा भी कुछ सख़्ती से कह देते तो वे एकदम से अपनी माँ को याद करके आँसुओं से भर जाते थे। इसलिए, शिक्षकों ने इस बात का बहुत ध्यान रखा कि वे उनके साथ नम्र बने रहें, उन पर व्यक्तिगत ध्यान दें और उन्हें अपनी फ़िक्र जताएँ। माँ-बाप द्वारा बच्चों की किताबों का ख़र्च न उठा पाने से लेकर बच्चों का अपनी चीज़ों का ध्यान न रख पाने तक, शिक्षकों के लिए भी स्थिति बहुत कठिन रही है लेकिन उन्होंने यह सुनिश्चित किया है कि वे दया, धैर्य, उत्साहवर्धन और छोटी-से-छोटी उपलब्धि की प्रशंसा द्वारा एक आपसी सहयोग का वातावरण बनाए रखें।

सारे बदलावों और सीखने की प्रगति का श्रेय शिक्षकों की बच्चों और उनके माँ-बाप के साथ हुए संवादों, गतिविधि-आधारित शिक्षा, हर एक बच्चे के सीखने के स्तर पर आधारित सीखने-सिखाने की प्रक्रिया और बच्चों के साथ प्यार व सम्मान के व्यवहार को दिया जा सकता है।

उपस्थिति और घर के दौरे

नियमित उपस्थिति बहुत ज़रूरी है, इसलिए जब भी कोई बच्चा लगातार तीन दिन तक नहीं आता तो शिक्षक माता-पिता को फ़ोन करके बच्चे के बारे में पूछताछ करते हैं। इससे माँ-बाप को तसल्ली होती है कि शिक्षक को हमारे बच्चों की परवाह है।

हर एक-दो महीने में माता-पिता के साथ मीटिंग रखी जाती है जहाँ बच्चों के प्रदर्शन के बारे में बातचीत की जाती है। यदि माता-पिता मीटिंग में नहीं आते तो शिक्षक उनके घर जाते हैं ताकि वे माता-पिता के साथ मिलकर बच्चे के प्रदर्शन के बारे में बातचीत कर सकें। इस तरह माता-पिता भी बच्चे की पढ़ने की प्रक्रिया में शामिल हो जाते हैं।

जब कोई नया बच्चा दाख़िल होता है तो शिक्षक उसकी पारिवारिक पृष्ठभूमि के बारे में जानकारी हासिल करते हैं ताकि बच्चा नई जगह पर घुल-मिल सके और कक्षा उसे अपना सके।

अनुशासन

बच्चों के एक बार स्कूल प्रांगण में घुसने के बाद उन्हें स्कूल की छुट्टी के बाद ही निकलने दिया जाता है। पूरे स्कूल में सफ़ाई का पूरा ध्यान रखा जाता है। चूँकि शौचालयों में भरपूर पानी आता है और विद्यार्थी उनका ठीक से इस्तेमाल करना जानते हैं, इसलिए शौचालय साफ़-सुथरे व सही ढंग से संचालित रहते हैं। बच्चे मध्याह्न भोजन योजना के तहत मिलने वाले खाने को बिल्कुल बर्बाद नहीं करते।

अन्य तरीक़े

सभी शिक्षक आपसी तालमेल से काम करते हैं व एक-दूसरे से सीखने में नहीं हिचकिचाते। वे सीखने के उपकरणों व संसाधनों को भी एक-दूसरे के साथ साझा करते हैं। स्कूल की सुविधाओं और कार्यक्रमों के उद्देश्यों और उनकी महत्ता को

चित्र-1: 1-100 की संख्या वाले चार्ट में कुछ विशिष्ट गुणज संख्याओं का निरूपण।

समझकर वे सुनिश्चित करते हैं कि इनका सही रखरखाव और इस्तेमाल किया जाए। शिक्षकों के मुताबिक़, खाना, दूध, केले, अण्डे और मूँगफली की चिक्की देने से बच्चों में शारीरिक ऊर्जा और उत्साह बढ़ा है।

स्कूल और समुदाय ने बच्चों में बदलाव और उनकी सीखने की उपलब्धियों को प्रशंसा और सम्मान देना शुरू कर दिया है। इसका मुख्य कारण है, बच्चों को समझने के प्रति शिक्षकों के नज़रिए में बदलाव और बच्चों के सीखने की ज़रूरत मुताबिक़ वातावरण की रचना करते हुए उनके सम्पूर्ण विकास हेतु सक्रिय रूप से काम करना। यह स्कूल इस बात का एक असाधारण उदाहरण है कि बच्चों को देखने, उन्हें सम्बोधित करने और उनसे व्यवहार करने का हमारा तरीक़ा उनके सीखने को किस तरह प्रभावित करता है।

चित्र-2 : मापक या संख्या रेखा का उपयोग करते हुए दो संख्याओं का लघुत्तम समापवर्त्य मालूम करना।

चित्र-3 : 100-1 की संख्या वाले चार्टों में गुणज संख्याओं 8 ,3 और 12 का निरूपण।

सुनीता सुरेशराव अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन, विजयपुरा, कर्नाटक की ज़िला समन्वयक हैं। वे पहले मानव संसाधन और युवा नेतृत्व विकास के क्षेत्रों में कई मानव विकास एजेंसियों के साथ काम कर चुकी हैं। संगीत सुनना व यात्रा करना उनके शौक़ हैं। उनसे *sunita@premjifoundation.org* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : पूनम जैन **पुनरीक्षण :** भरत त्रिपाठी **कॉपी एडिटर :** अनुज उपाध्याय

सीखने की कठिनता वाले बच्चों के लिए सामाजिक-भावनात्मक मदद

माला आर. नटराजन

डिस्लेक्सिया क्या है?

ऐसे बच्चे जिन्हें डिस्लेक्सिया है अन्य बच्चों के समान ही हैं, जबकि उनके शैक्षणिक प्रदर्शन और क्षमताओं में अन्तर दिखता है। यह अन्तर उनकी बुद्धि की वजह से नहीं है (ज़्यादातर बच्चों का आईक्यू औसत या ज़्यादा होता है)। केवल उनके दिमाग़ में न्यूरॉन अलग तरह से जुड़े होते हैं जिससे उनका सूचनाओं को ग्रहण करना और संसाधित करना प्रभावित होता है। इन बच्चों को पढ़ने, लिखने, वर्तनी या गणित हल करने में कठिनाई पेश आती है। इसके साथ ही ये कई कार्यों को करने में जैसे चीजों को व्यवस्थित करना, योजना बनाना, प्राथमिकता तय करना। वे आवेग और भावनात्मक नियंत्रण में भी कठिनाई महसूस करना दर्शा सकते हैं।

एक स्कूल के वातावरण में बच्चा दिन के अधिकांश समय सीखी हुई शैक्षणिक कुशलताओं का प्रदर्शन करता है। जब कोई बच्चा पढ़ने, लिखने, गणित करने, उत्तर लिखने या बोर्ड से उतारने में जूझ रहा होता है तब शिक्षक और माता-पिता इससे तंग होने लगते हैं। उसके सहपाठी और दोस्त उसका मज़ाक उड़ाते हैं और उस पर हँसते हैं। बच्चे को 'आलसी', 'सुस्त' और 'लूज़र' सम्बोधनों से बुलाने लगते हैं। उस बच्चे के साथ काम करने वाले शिक्षक या मदद करने वाले उसका रिज़ल्ट सुधारने के लिए इन बच्चों से लगातार प्रयास करवाते रहते हैं। इससे परेशान होकर बच्चा इस छवि से बाहर आने और अपने साथियों के साथ जुड़ने का प्रयास करता है। अक्सर ये अनुभव बच्चे के भावनात्मक स्वास्थ्य पर चोट पहुँचाते हैं और सीखने और उपलब्धियों में बाधा की तरह दिखते हैं।

एक बच्चे का भावनात्मक स्वास्थ्य उसके साथियों, परिवार के लोगों, स्कूल में काम करने वाले लोगों और शिक्षकों से प्रभावित होता है। एक बच्चा जो किसी वातावरण में ख़ुश है वह दूसरे में तनावग्रस्त हो जाता है। एक बच्चा जिसे पढ़ने में दिक़्क़त है, वह दौड़ में अच्छा हो सकता है। दौड़ में भाग लेना उसके लिए तनावमुक्त होने का एक ज़रिया बन सकता है और इससे वह ख़ुद में अच्छा महसूस करेगा। दूसरी ओर, पढ़ने में होने वाली कठिनाइयाँ उसके मन पर गहरे घाव छोड़ सकती हैं। जिससे वह बच्चा कक्षा में अपने में सीमित रहने को मजबूर हो जाएगा। यह किसी स्कूल जाते हुए बच्चे के लिए कितनी तनावग्रस्त ज़िन्दगी होगी, जिसका बोझ उसे और दबाएगा।

बच्चे की मदद कैसे करें

आकलन

पुन: कि डिस्लेक्सिया वाला बच्चा कक्षा के दूसरे बच्चों जितना ही बुद्धिमान है, फिर भी उसे उस तरीक़े से पढ़ाना चाहिए जिस तरीक़े से वह समझ सके। यानी कि हर बच्चे के सीखने के अपने विशिष्ट तरीक़े से व्यक्तिगत शिक्षा योजना (IEP), जो कि गुणों/ ताक़तों का उपयोग कर बच्चे में आवश्यक कौशल विकसित करती है, सहायक तंत्र का आधार बनती है। ये उपचारी कक्षाएँ व्यवस्थित, संरचित, बहु-आयामी और बहु-बुद्धिमत्ता के दृष्टिकोण से समाहित होती हैं।

यह सहायक कक्षाएँ तब शुरू की जा सकती हैं जब किसी बच्चे में डिस्लेक्सिया की पहचान होती है या उसमें डिस्लेक्सिया होने की शंका होती है। शिक्षक द्वारा बच्चे के क्रियाकलापों का व्यवस्थित अवलोकन (चेकलिस्ट के साथ) उसकी कठिनाइयों का प्रकार या प्रकृति पता करने में मदद कर सकता है। यदि ज़रूरत हो तो (किसी विशेष शिक्षक द्वारा या प्रशिक्षित मनोवैज्ञानिक द्वारा) मानक टूल्स का उपयोग करके बच्चे की मुश्किलों के दायरे का, उनसे जुड़े उप-कौशलों का और उसकी सीमा का पता कर सकते हैं।

यह आकलन रिपोर्ट बहुआयामी हस्तक्षेप को सुगम बनाती है। उपचारी सहायक का आधार होने के अलावा यह रिपोर्ट आवश्यक कौशलों का निर्माण करने वाली और बनाए रखने वाली गतिविधियाँ सुझा सकती है। यह कक्षा में समाहित होने और बोर्ड परीक्षाओं में रियायत पर ध्यान केन्द्रित करती है।

कक्षा और परीक्षा में समाहित होना

कक्षा में समाहित करने से बच्ची को ऐसे उप-कार्यों, जिसमें उसे कौशल हासिल नहीं हैं, में ऊर्जा ख़र्च करने की बजाय सीखने पर ध्यान केन्द्रित करने में मदद मिलती है। उदाहरण के लिए एक बच्ची जो लिखने की कठिनाई से जूझ रही है वह अपनी ज़्यादातर ऊर्जा बोर्ड से कॉपी में उतारने में ही ख़र्च कर रही होगी और वह टॉपिक समझने के लिए उसमें ऊर्जा बहुत ही कम या नहीं ही बची होगी। यदि शिक्षक उसे रिकॉर्डेड नोट्स या फ़ोटो कॉपी किए हुए नोट्स इस्तेमाल करने की इज़ाज़त दे दे तो इससे उसकी ऊर्जा उस विषय को समझने में उपयोग हो सकती है।

इसी तरह से कई परीक्षा बोर्ड हाई स्कूल परीक्षाओं में डिस्लेक्सिया वाले बच्चों को कई तरह की रियायतें देते हैं। कुछ बोर्ड इन बच्चों के लिए गणित का पेपर हटा देते हैं (जिन बच्चों को संख्याओं के साथ कठिनाई होती है) या दूसरी भाषा का पेपर हटा देते हैं (जिन बच्चों को भाषा के साथ कठिनाई है)। अन्य रियायतों में कैलक्यूलेटर का उपयोग, अतिरिक्त समय, अतिरिक्त लेखक या रीडर का उपयोग शामिल है। ये सहायक तंत्र बच्चे को डिस्लेक्सिया से होने वाली परेशानियों के तनाव को कम करते हैं और विद्यार्थी को एक अनुकूल वातावरण देते हैं, जिससे वह दूसरे क्षेत्रों में अच्छा प्रदर्शन कर सके।

कक्षा प्रक्रियाएँ और सहपाठियों/ साथियों का संवेदीकरण

स्कूल में बच्चों का जीवन केवल पढ़ाई में प्रदर्शन और परीक्षाओं तक ही सीमित नहीं होता, दिन-प्रतिदिन की गतिविधियाँ भी उसके जीवन में कठिनाइयाँ पैदा करती हैं। उदाहरण के लिए स्कूल में रीड-अलाउड सत्र सीखने-सिखाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। डिस्लेक्सिया वाले कुछ बच्चों को भाषा का ज्ञान बहुत अच्छी तरह हो सकता है लेकिन भाषा पढ़ना उनके लिए चुनौतीपूर्ण हो सकता है और ये रीड-अलाउड सत्र इन बच्चों के लिए और भी चुनौतीपूर्ण हो सकते हैं। सामान्य प्रतिक्रिया के तौर पर, डिस्लेक्सिया वाला बच्चा अपने में सीमित हो जाता है, कक्षा में उसकी रुचि बहुत कम हो जाती है और स्कूल छोड़ने की भी स्थिति बन जाती है।

कक्षा में मॉडल रीडिंग हो जाने के बाद में शिक्षक 'फ्रेज़ल रीडिंग' या 'बडी (मित्र) सिस्टम' को अपना सकते हैं। शिक्षक को पढ़ने में जूझ रहे बच्चे को क्रिया के पहले के शब्दों को और क्रिया के बाद के शब्दों को अलग-अलग समूह में रखने (या पढ़ने) के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। परिणामस्वरूप बच्चा एक के बाद एक शब्दों को पढ़ने की बजाय, कुछ छोटे लेकिन अर्थ पूर्ण वाक्य बना पाता है। पहले मॉडल रीडिंग और फिर छोटे-छोटे वाक्यों में ज़ोर से पढ़ने से बच्चे को नए शब्दों और लिखावट पहचानने में मदद मिलती है। 'रीडिंग बडी' समझने के लिए सहायक मंच बनाता है जबकि फ्रेज़ल रीडिंग वाक्यों को छोटे-छोटे समूह में बाँटकर समझने में मदद करती है। यह बच्चे में कक्षा में भागीदारी करने का आत्मविश्वास बढ़ा देता है, बिना इस डर के कि उसे अपनी पढ़ने की कठिनाई के कारण कक्षा में शर्मिन्दगी उठानी पड़ेगी। 'बडी सिस्टम' न सिर्फ़ डिस्लेक्सिया वाले बच्चों की मदद करता है बल्कि वह बाक़ी अन्य बच्चों को उनके प्रति ज़िम्मेदार और संवेदनशील भी बनाता है।

यह केवल तभी सम्भव हो सकता है जब बाक़ी बच्चों में शिक्षकों या अभिभावकों द्वारा इन बच्चों के प्रति संवेदीकरण किया जाए। अन्य बच्चों को डिस्लेक्सिया और उससे होने वाली कठिनाइयों के बारे में समझाना, डिस्लेक्सिया वाले बच्चों के लिए बराबर मौक़ा बनाता है, उनकी ख़ूबियों को पहचान पाता है और 'चिढ़ाए जाने' से बचाता है। यह उन्हें डिस्लेक्सिया वाले बच्चों की अक्षमता के बारे में ठीक समझ देता है और उनके सीखने के लिए उचित सहयोग देने के प्रति सामाजिक ज़िम्मेदारियों का एहसास दिलाता है।

हुनर की पहचान

स्कूल के दिन केवल शैक्षणिक कामों (पढ़ाई) के लिए नहीं होते हैं। यहाँ बच्चे के अन्दर छुपे हुए कई हुनर और क़ाबिलियत के प्रदर्शन और पहचान के कई मौक़े मिलते हैं। यह उसके ख़ुद के महत्त्व का एहसास दिलाता है। अक्सर डिस्लेक्सिया वाले बच्चों का शैक्षणिक प्रदर्शन अच्छा नहीं होने की वज़ह से उनके प्रति एक धारणा बन जाती है, जिसके कारण अन्य हुनर वाली गतिविधियों, जैसे वार्षिक उत्सव, के लिए बच्चों का चयन करते वक़्त भी इनको दरकिनार कर दिया जाता है। शिक्षकों को यह जानना बहुत ज़रूरी है कि डिस्लेक्सिया से प्रभावित बच्चे की छुपी हुई प्रतिभा को उभारने के मौक़े बनाना बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। उनकी प्रतिभा की पहचान उनमें आत्मविश्वास पैदा करेगी और परिणामस्वरूप उनमें स्कूल के प्रति रुचि बढ़ाएगी। और यह रास्ता उनके सीखने की राह को बेहतर बनाएगा और उनकी ज़रूरतों के कारण होने वाली समस्याओं से उबारेगा।

खेल

सामाजिक-भावनात्मक विकास में खेल एक महत्त्वपूर्ण रास्ता है। एक ऐसा माहौल जो समावेशी खेल को बढ़ावा देता है, यह डिस्लेक्सिया वाले बच्चे को अपने साथियों से प्रबन्धकीय कार्य कौशल सीखने के ज़रूरी मौक़े देगा। अपने आप में आवेग नियंत्रण, लचीली सोच, व्यवस्थापन और स्व-आकलन इत्यादि जैसे कौशल विकसित करने से बेहतर तरीक़ा और क्या हो सकता है?

इसके अलावा, खेल कई साक्षरता कौशलों को सीखने का एक वैकल्पिक तरीक़ा भी है। उदाहरण के तौर पर बच्चों को नए शब्द सुनने के, उन शब्दों के विभिन्न सन्दर्भ में इस्तेमाल सुनने के और इन शब्दों के सही उपयोग करने के मौक़े मिलने से भाषा सीखना बहुत ही जैविक या सहज बनाता है। इसी तरह कम-ज़्यादा, बड़ा-छोटा जैसी अवधारणाएँ खेल का हिस्सा होती हैं। कई खेलों में गिनती करना और स्कोर का रिकॉर्ड रखना होता है, इस तरह ये खेल गणितीय कौशल के मौक़े देते हैं। एक पढ़ाई मुक्त, खेल वाला वातावरण डिस्लेक्सिया वाले बच्चे को विकसित कर सकता है।

हमें कहाँ से शुरू करना चाहिए

उपरोक्त सभी सहायता तभी सम्भव हो सकती है जब बच्चे के सबसे नज़दीकी, अभिभावक और शिक्षक, बच्चे की न्यूरोलाजिकल स्थिति से वाक़िफ़ हों और उसे स्वीकारते हों। इसलिए इसके लिए जागरूकता कार्यक्रम चलाना बहुत ज़रूरी है, जो इस न्यूरोलॉजिकल स्थिति के सभी पहलुओं को उजागर करे। स्कूल इस क्षेत्र के प्रोफ़ेशनल व्यक्तियों के साथ मिलकर इस तरह के कार्यक्रम कर सकते हैं। जानकार अभिभावक और शिक्षक डिस्लेक्सिया वाले बच्चों की ताक़त पहचानकर उसे सराहने में और कमी को समझकर उनके साथ संवाद करने में सक्षम होंगे। इससे वे न सिर्फ़ एक अच्छा माहौल बना पाएँगे बल्कि सही हस्तक्षेप के लिए पहला क़दम भी उठा पाएँगे।

लोगों (अभिभावक, शिक्षक और स्कूल) की सहयोगी क्रियाएँ, स्वीकरण, सशक्तिकरण और डिस्लेक्सिया वाले बच्चों को बढ़ावा देना, ये सभी मिलकर उनके लिए ज़रूरी सामाजिक-भावनात्मक जगह देंगे जो उन्हें एक उत्पादक और ख़ुश व्यक्ति बनाएँगे।

माला आर. नटराजन एक विशेष शिक्षक हैं। उन्होंने डिस्लेक्सिया से पीड़ित बच्चों को पढ़ाने के लिए प्रशिक्षण लिया है। वर्तमान में वे मद्रास डिस्लेक्सिया एसोसिएशन (MDA), चेन्नई के साथ काम कर रही हैं। इससे पहले वे सूचना प्रौद्योगिकी में कॉर्पोरेट क्षेत्र में काम कर चुकी हैं। एक जोशीली शिक्षक के रूप में उनका योगदान इस प्रोजेक्ट में प्रायोगिक अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है। उनसे *mala.rn@mdachennai.com* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : अर्पिता व्यास **पुनरीक्षण :** प्रतिका गुप्ता **कॉपी एडिटर :** अनुज उपाध्याय

परिवर्तन और कठिनाइयाँ हर किसी के जीवन का, यहाँ तक कि बचपन का भी, हिस्सा होती हैं, ऐसे समय में तनाव और चिन्ता सामान्य प्रतिक्रियाएँ हैं। हम अक्सर मानते हैं कि तनाव और चिन्ता नकारात्मक परिस्थितियों से उत्पन्न होने वाली भयानक भावनाएँ हैं। हालाँकि, ख़ुशी के अवसरों (जैसे स्कूल की घटनाएँ, छुट्टियाँ या सामाजिक रुचियाँ) की प्रत्याशा भी कभी-कभी तनावपूर्ण हो सकती है। जब कुछ ऐसा होता है जिसके बारे में पूर्वानुमान लगाने या फिर जिसे संशोधित या संरक्षित करने की आवश्यकता होती है, तो बच्चे तनाव और चिन्ता का अनुभव करते हैं। जब उन्हें महत्त्वपूर्ण लगने वाली कोई चीज़, ख़तरे में होती है, तो वे चिन्तित हो जाते हैं।

- शालिनी सोलंकी, भावनाओं को नियंत्रित करने के लिए कुछ सरल गतिविधियाँ, पेज 50

नियमित स्कूलों में विकलांग बच्चे

पल्लवी दत्ता

अपनी सात साल की उम्र के हिसाब से कहीं अधिक परिपक्व नेहा, भोपाल के एक अग्रणी स्कूल में दूसरी कक्षा की छात्रा है। अपने शिक्षकों की चहेती, वह अपने साथियों के बीच एक लीडर है। नेहा ख़ुद अकादमिक रूप से अच्छा प्रदर्शन कर रही है, साथ ही उसे अपने सहपाठियों के असाइनमेंट में उनकी मदद करना भी अच्छा लगता है। वह जीवन से इतनी भरपूर है कि कोई भी आसानी से यह भूल सकता है कि वह दृष्टिहीन है और उसकी पाठ्यपुस्तकें छपी हुई नहीं बल्कि ब्रेललिपि में हैं।

चार साल की उम्र तक नेहा को कोई औपचारिक शिक्षा प्राप्त नहीं हुई थी। उसके माता-पिता ने उसे घर पर ही शिक्षा प्रदान करने की कोशिश की थी। क्योंकि उनके घर के आस-पास मौजूद अधिकांश स्कूलों में विकलांग विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान करने के लिए ज़रूरी साधन नहीं थे। वे अपनी बच्ची के बारे में चिन्तित भी थे - वह एक नियमित (मुख्यधारा के) स्कूल में ख़ुद को कैसे ढाल पाएगी। वह अपने अधिकांश सहपाठियों की तुलना में काफ़ी बड़ी होगी, इसलिए क्या उसे अलग-थलग कर दिया जाएगा या इससे भी बदतर, क्या उसे बहिष्कृत कर दिया जाएगा। तभी नेहा के माता-पिता को पहली बार 'आरुषि'के बारे में पता चला, जो कि शारीरिक और बौद्धिक विकलांगताओं से प्रभावित बच्चों और वयस्कों के लिए काम करने वाली एक ग़ैर-लाभकारी संस्था है,और वे उसे वहाँ लेकर आए।

अपने बुनियादी नज़रिए के हिस्से के रूप में, 'आरुषि' विकलांग बच्चों और लोगों को ऐसे वातावरण से बाहर ले जाना चाहती है जो 'विशेष आवश्यकताओं' को पूरा करता है। 'आरुषि' उनमें ऐसे जीवन कौशल विकसित कर उन्हें सशक्त बनाती है जो उन्हें समाज की 'मुख्यधारा' में सम्मिलित होने में सक्षम बनाते हैं।

विशेष विद्यालय क्यों और कब आवश्यक होते हैं?

हालाँकि दो से छह साल की उम्र के विकलांग बच्चे नियमित स्कूलों में भर्ती के पात्र होते हैं, लेकिन उन्हें नियमित स्कूल भेजने का निर्णय व्यक्तिपरक होता है और बच्चे की विकलांगता की प्रकृति और गम्भीरता पर आधारित होता है। इस आयु वर्ग के हल्की या मध्यम विकलांगता वाले बच्चों की नियमित स्कूलों में भलीभाँति सम्मिलित होने की बेहतर सम्भावना होती है।

जिन बच्चों को देखने या सुनने सम्बन्धी विकलांगताएँ होती हैं, वे किसी भी उम्र में नियमित स्कूल जा सकते हैं, क्योंकि उनकी विकलांगताएँ विशुद्ध रूप से शारीरिक होती हैं न कि बौद्धिक प्रकृति की। डाउन सिंड्रोम, ऑटिज़्म और अन्य बौद्धिक विकलांगताओं से प्रभावित बच्चे, जिनके विकास के पड़ावों में देरी होती है, वे भी नियमित स्कूलों में जा सकते हैं, लेकिन ऐसा करने से पहले उन्हें स्कूल की तैयारी के लिए सहायता और प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।

जब विकलांग बच्चे मुख्यधारा के स्कूल में पढ़ते हैं, तो उनके और बाक़ी बच्चों के बीच होने वाले संवाद ग़ैर-विकलांग बच्चों के बीच विकलांगों के प्रबल समर्थक और हिमायती तैयार कर सकते हैं। ग़ैर-विकलांग बच्चों में विकलांग बच्चों की ज़रूरतों और क्षमताओं के बारे में अपेक्षाकृत पहले जागरूकता विकसित हो जाती है, जिससे न केवल विकलांग लोगों के लिए समाज में एक यथोचित स्थान बनाने में बल्कि एक सहानुभूतिपूर्ण, न्यायसंगत और समतामूलक समाज के निर्माण में भी बहुत मदद मिलती है।

विकलांग बच्चे की देखभाल का सबसे महत्त्वपूर्ण हिस्सा प्रारम्भिक हस्तक्षेप होता है। प्रारम्भिक वर्षों में माता-पिता और शिक्षकों को विकास सम्बन्धी विलम्ब के बारे में सावधान रहने की ज़रूरत होती है। यदि बच्चा विकास का कोई पड़ाव चूक जाता है या उसमें देरी हो जाती है, तो पहले किसी बाल रोग विशेषज्ञ से परामर्श लिया जाना चाहिए और उसकी सलाह पर बच्चे को ऐसे किसी संगठन और स्कूल में भेजा जा सकता है जो उसकी आवश्यकताएँ पूरी करता हो। ऐसे स्थान पर, काउंसलर और मनोवैज्ञानिक उस कठिनाई को समझने के लिए निदान परीक्षणों जैसे तरीक़ों का इस्तेमाल करते हैं जिसका सामना सम्भवतः बच्चा करता है और वे आवश्यक हस्तक्षेपों के लिए एक योजना बनाते हैं। जो देखभालकर्ता बच्चों के प्रति अतिसंरक्षण की प्रवृत्ति रखते हैं या इस तथ्य से इन्कार करते हैं कि उनके बच्चे को किसी क़िस्म की विकलांगता है, वे उस प्रक्रिया में बाधा डालते हैं जिसके माध्यम से बच्चा स्वतंत्रता और अपने जीवन पर नियंत्रण प्राप्त करने के लिए उपयुक्त उपचार और सहायता प्राप्त कर सकता है।

स्कूल की तैयारी का कार्यक्रम

'आरुषि' के विशेष शिक्षकों ने नेहा को ब्रेल पढ़ाने पर ध्यान केन्द्रित किया, जबकि ऑक्यूपेशनल थेरेपिस्ट ने उसे दैनिक जीवन के अन्य कौशलों, जैसे गतिशीलता में मदद की। उन्होंने उसे ब्रेल पढ़ने में सक्षम बनाने के लिए मौखिक और संवेदी अभ्यासों के साथ शुरुआत की। इसके साथ ही, उन्होंने उसकी क्षमता और मुख्यधारा की शिक्षा के लिए उसकी तैयारी का आकलन किया। उन्हें यह तय करने में लगभग छह महीने लगे कि नेहा न केवल एक नियमित स्कूल में सफलतापूर्वक सम्मिलित हो सकती है, बल्कि वह वहाँ उन्नति भी करेगी।

'आरुषि' में, पाँच साल से कम उम्र के उन विकलांग बच्चों के लिए, जो नियमित स्कूलों में नामांकित नहीं हैं, स्कूल की तैयारी के लिए 'कोशिश' नामक एक कार्यक्रम संचालित किया जाता है। यहाँ, सेरेब्रल पाल्सी, अधिगम सम्बन्धी कठिनाइयों और अन्य शारीरिक विकलांगताओं और विकास सम्बन्धी विलम्ब से प्रभावित बच्चों को स्कूल की तैयारी के बुनियादी कौशलों से लैस किया जाता है, ताकि उन्हें जल्द-से-जल्द नियमित स्कूलों में प्रवेश दिलाया जा सके। उनकी विकलांगता की प्रकृति और कारण निर्धारित करने के लिए मूल्यांकन किया जाता है, जिसके बाद उनकी चिकित्सा के लिए एक विस्तृत योजना तैयार की जाती है। समन्वय, नेत्र सम्पर्क, एकाग्रता अवधि में सुधार करने, लम्बे समय तक बैठने और नियत कार्यों पर ध्यान केन्द्रित करने की क्षमता विकसित करने के लिए बौद्धिक रूप से विकलांग बच्चों को ऑक्यूपेशनल थेरेपी प्रदान की जाती है ताकि वे नियमित कक्षा में ढल सकें।

जिन बच्चों में बोलने सम्बन्धी विकार होता है उन्हें वाक् चिकित्सा (स्पीच थेरेपी) दी जाती है। प्रशिक्षक यह निर्धारित करते हैं कि क्या बच्चे को सुनने सम्बन्धी विकार भी है। यदि हाँ, तो वे हियरिंग एड (श्रवण यंत्र) की आवश्यकता और प्रभावशीलता के बारे में निर्णय लेते हैं। यदि वे यह पाते हैं कि बच्चा सहायक उपकरण के बिना सुन सकता है लेकिन फिर भी बोल नहीं रहा है, तो स्पीच थेरेपिस्ट ऐसे बच्चे की सहायता के लिए वैकल्पिक साधनों का उपयोग करते हैं। ये उपचार लम्बे समय तक चलते हैं और एक बच्चे के नियमित स्कूल में सम्मिलित हो जाने के बाद भी जारी रहते हैं।

प्ले-वे (खेल का तरीक़ा) का उपयोग करते हुए, विशेष शिक्षक बच्चों को श्रवण, दृश्य और स्पर्श सम्बन्धी प्रेरणाओं से परिचित कराते हैं। सीखने के लिए बच्चे की तत्परता और उसकी भावनात्मक और शारीरिक क्षमताओं जैसे कारकों से मार्गदर्शन प्राप्त करते हुए शिक्षक बच्चों को उन कौशलों और साधनों से लैस करने के लिए अनेक रणनीतियाँ अपनाते हैं जिनकी आवश्यकता उन्हें अपने 'विशेष' स्थानों के संकीर्ण दायरे से परे स्थित दुनिया में विकास करने के लिए और बड़े होकर स्वतंत्र रूप से जीने व काम करने के लिए होती है।

नेहा का प्रशिक्षण तो ब्रेल, संवेदी और गतिशीलता सम्बन्धी अभ्यासों पर केन्द्रित था, पर 'आरुषि' द्वारा प्रत्येक बच्चे के लिए ऐसी रणनीति तैयार की जाती है और उसे ऐसी चिकित्साएँ प्रदान की जाती हैं जो उसकी आवश्यकताओं के अनुरूप हों। उदाहरण के लिए, डाउन सिंड्रोम से प्रभावित बच्चों की न केवल शारीरिक सीमाएँ होती हैं, बल्कि वे विकासात्मक और सामाजिक चुनौतियों का भी सामना करते हैं और अक्सर स्पष्ट रूप से बोलने में भी संघर्ष करते हैं। उनके लिए तैयार की जाने वाली प्रक्रिया में अकादमिक ज्ञान प्राप्त करने के साथ-साथ स्पीच थेरेपी, नेत्र सम्पर्क बनाना और सामाजिक कौशल निखारना शामिल होता है। उनके सामाजीकरण का कौशल एक अन्य विकासात्मक क्षेत्र है जिस पर 'कोशिश' में प्रशिक्षक ध्यान केन्द्रित करते हैं। इस प्रशिक्षण के बिना, ये बच्चे मिश्रित कक्षा में भलीभाँति समायोजित नहीं हो सकते।

देखभालकर्ता की काउंसलिंग

नेहा को नियमित स्कूल भेजने के बारे में उसके माता-पिता को जो आशंकाएँ थी उनके बारे में उन्हें काउंसलिंग प्रदान की गई। काउंसलरों ने उन्हें समझाया कि नेत्रहीनों के लिए स्कूल, भले ही अच्छे इरादे से और सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से संचालित किए जाते हैं, लेकिन वे नेहा की शिक्षा और अनुभवों को सीमित कर देंगे। ग़ैर-विकलांग बच्चों का साथ और उनका व्यवहार सम्बन्धी प्रभाव नेहा के विकास में एक उत्प्रेरक का काम करेगा। यह भी समझाया गया कि यह बच्चे का अधिकार है कि उसे अपनी पूरी क्षमता प्राप्त करने के लिए वह सभी अवसर मिलें जो ग़ैर-विकलांग बच्चों को मिलते हैं। 'आरुषि' यह सुनिश्चित करने के लिए भी माता-पिता की काउंसलिंग करती है कि बच्चों को घर पर भी सशक्तिकरण का उसी तरह का अनुभव मिले जैसा उन्हें स्कूल में मिलता है।

स्कूल में प्रवेश और उसके बाद

ब्रेल और ऑक्यूपेशनल थेरेपी में कौशल प्रशिक्षण के साथ-साथ, नेहा को पूर्वस्कूली पाठ्यचर्या की शिक्षा भी दी गई, इसलिए वह इस लिहाज़ से भी अपने साथियों जितनी प्रगति कर चुकी थी। नेहा, उसके माता-पिता और उसके शिक्षकों द्वारा की गई सारी मेहनत का नतीजा यह हुआ कि नेहा ने 2021 में एक सरकारी स्कूल में सीधे कक्षा-1 में प्रवेश पा लिया, जो उस समय छह साल की हो चुकी इस बच्ची के लिए उपयुक्त था।

नेहा अभी भी स्कूल से लौटने के बाद 'आरुषि' जाती है, जहाँ

उसे अपनी ज़रूरत के अनुसार अतिरिक्त शैक्षणिक सहायता और स्कूली जीवन के अन्य पहलुओं और अपने पाठ्येतर विकास में मदद मिलती है। नाटक, संगीत, नृत्य, योग और क्राफ्ट विकलांग बच्चों के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और उनके समग्र विकास के लिए ज़रूरी वातावरण प्रदान करने हेतु 'आरुषि' इन सभी साधनों का उपयोग करती है। व्यक्तित्व के विकास में नाटक की अहम भूमिका होती है। काग़ज़ काटने, मोड़ने और चिपकाने से आँखों और हाथों का आपसी समन्वय और सूक्ष्म पेशीय कौशल बेहतर होते हैं, ख़ासकर ऑटिज़्म स्पेक्ट्रम वाले बच्चों के लिए।

शिक्षकों के साथ कार्य

एक विकलांग बच्चे की अपने ग़ैर-विकलांग साथियों के साथ पढ़ने और बढ़ने की इस पूरी यात्रा में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका स्कूलों में शिक्षकों द्वारा निभाई जाती है और नियमित स्कूल प्रणाली में इन बच्चों की सफलता बहुत कुछ उन पर निर्भर करती है। इसलिए, यह महत्त्वपूर्ण है कि ये शिक्षक विकलांग बच्चों के नियमित स्कूलों में पढ़ने से सम्बन्धित आवश्यकता को समझें और हर सम्भव तरीक़े से इसमें सहायता करें। इसके अलावा, मुख्यधारा के स्कूलों द्वारा विकलांग विद्यार्थियों को प्रवेश देने से मना करने का जो मुख्य कारण बताया जाता है वह

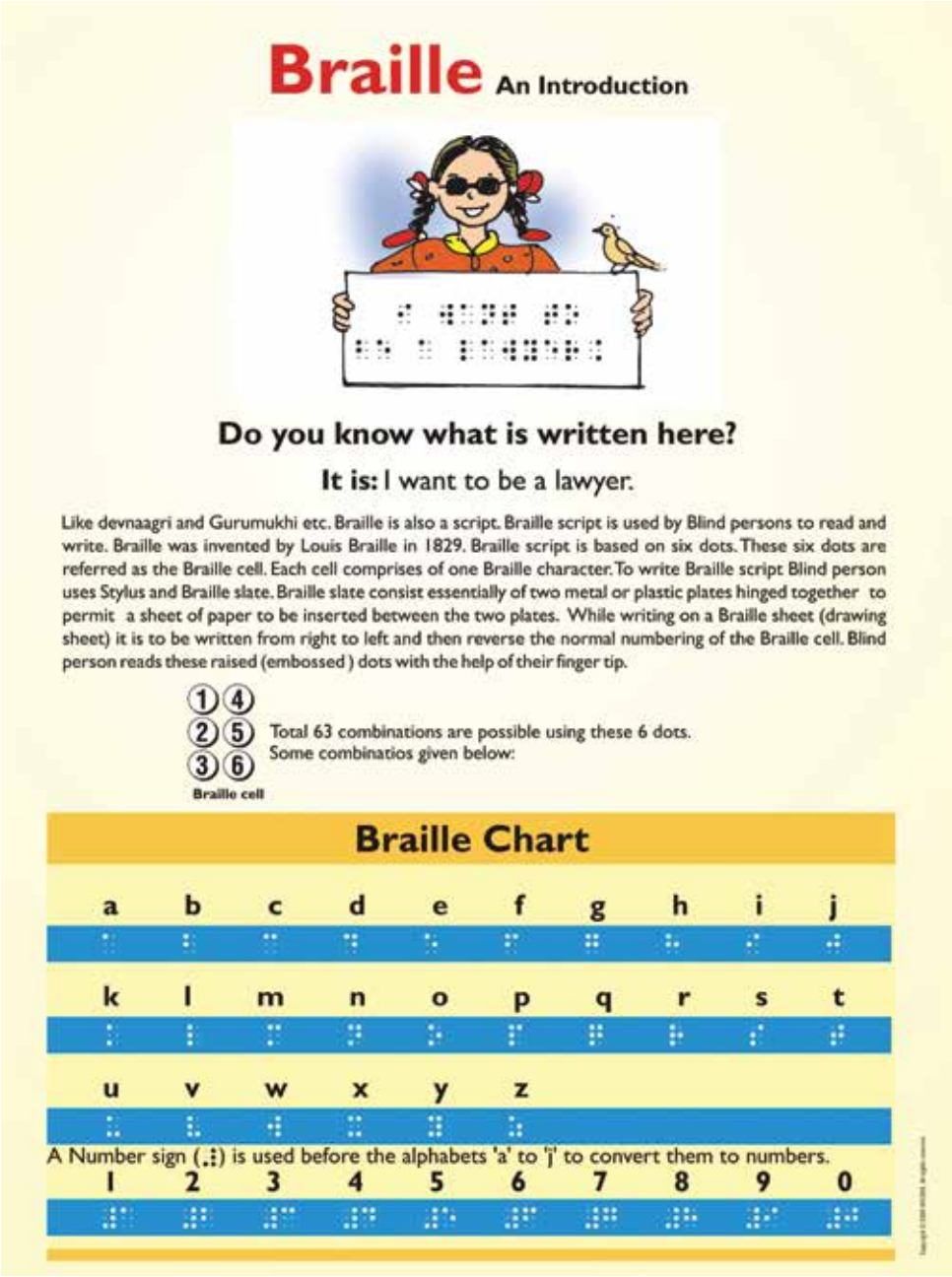

चित्र-1 : ब्रेल को समझना, जो कि एक शिक्षण सहायक सामग्री है।

है प्रशिक्षित स्टाफ़ की कमी। इसे दूर करने के लिए, 'आरुषि' स्कूल शिक्षकों और प्रशासकों के लिए प्रशिक्षण और जागरूकता कार्यक्रम आयोजित करती है जो विकलांगताओं से जुड़े मिथकों और ग़लत धारणाओं को दूर करने पर ध्यान केन्द्रित करते हैं और विकलांग बच्चों के मुख्यधारा के स्कूलों में पढ़ने के महत्त्व पर ज़ोर देते है।

'आरुषि' द्वारा उन्मुखीकरण कार्यशालाओं का आयोजन किया जाता है जिनमें शिक्षक अपने कक्षा के अनुभव विशेषज्ञों के साथ साझा करते हैं जो विकलांग बच्चों की ज़रूरतें समझने में उनकी मदद करते हैं। शिक्षकों को नवीनतम शिक्षण विधियों, शिक्षाशास्त्र और रणनीतियों से परिचित कराया जाता है जिन्हें वे उन कक्षाओं में इस्तेमाल कर सकते हैं जिनमें विकलांग बच्चे होते हैं। शिक्षक बच्चों द्वारा अनुभव की जाने वाली सीखने सम्बन्धी और अन्य कठिनाइयों की पहचान करने और उनका आकलन करने के तरीक़े भी सीखते हैं। बीते वर्षों में, मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ में सरकारी स्कूलों के तीन लाख से अधिक शिक्षकों ने इन उन्मुखीकरण और प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भाग लिया है।

चित्र-2 : उन शिक्षकों के लिए कुछ सरल सुझाव जिनकी कक्षाओं में विकलांग बच्चे हैं।

स्कूलों में शिक्षकों को उनके काम में सहायता प्रदान करने के लिए 'आरुषि' उन्हें शिक्षण सहायक सामग्री प्रदान करती है, जैसे कि ब्रेल और संकेत भाषा में सम्बन्धित प्रतीकों के साथ देवनागरी और अँग्रेज़ी वर्णमाला के चार्ट। 'आरुषि' ने दृष्टि सम्बन्धी विकलांगताओं से प्रभावित बच्चों को ब्रेल और गणित पढ़ाने और सुनने में कठिनाई झेलने वाले बच्चों को सांकेतिक भाषा सिखाने के बारे में वीडियो ट्यूटोरियल भी तैयार किए हैं।

उन शिक्षकों के लिए सामान्य सुझाव जिनकी कक्षाओं में विकलांग बच्चे हैं

- एक दोस्ताना व्यवस्था की शुरुआत करें और विकलांग बच्चों को ऐसे अन्य विद्यार्थियों के साथ बैठाएँ जो उनकी सहायता करने की इच्छा रखते हैं और सहायता करने में सक्षम हैं।
- इन बच्चों के साथियों को उनके लिए लिखने वालों, नोट लेने वालों और पढ़ने वालों के रूप में स्वेच्छा से काम करने के लिए प्रोत्साहित करें।
- पाठ, परीक्षाओं और नियत कार्यों में अधिक समय की अनुमति दें।
- यह सुनिश्चित करने के लिए निर्देशों को दोहराएँ कि निर्देश और प्रश्न भलीभाँति समझ लिए गए हैं।

जब दृष्टिबाधित बच्चा कक्षा में होता है :

- स्पर्श (स्पर्श संवेदन) के माध्यम से शिक्षण को अधिकतम सीमा तक बढ़ाएँ।
- जहाँ सम्भव हो चित्रों की बजाय त्रिआयामी (3D) मॉडलों का उपयोग करें।
- यदि मॉडल उपलब्ध नहीं हैं तो चित्रों का वर्णन करें।
- इशारों या हाव-भाव की बजाय आवाज़ के द्वारा निर्देश और संकेत दें।
- दृष्टिबाधित विद्यार्थियों को कक्षा में सामने बैठाएँ।

जब सुनने में कठिनाई वाला बच्चा कक्षा में हो :

- दृश्य साधनों के माध्यम से शिक्षण को अधिकतम सीमा तक बढ़ाएँ।
- दिए गए किसी भी निर्देश के लिए लिखित प्रतियाँ और दृश्य सहायता सामग्री प्रदान करें।
- कक्षा में उपयोग किए जाने वाले किसी भी वीडियो में नीचे आने वाले कैप्शन चालू करें।
- उन्हें कक्षा में सामने बैठाएँ ताकि वे आसानी से लिप-रीडिंग कर सकें।

सारांश

'आरुषि' ने 500 से अधिक बच्चों को मुख्यधारा की शिक्षा में शामिल करने में मदद की है। इन सफलता की कहानियों में से प्रत्येक के पीछे एक स्कूल शिक्षक है जो अपनी कक्षा के प्रत्येक बच्चे को सफल होने में मदद करने के लिए अतिरिक्त प्रयास करने के लिए तैयार था। आवश्यक विशेष उपायों से अवगत, इन शिक्षकों ने विद्यार्थियों की यात्रा में उन तरीक़ों से सहायता की जो बच्चों के साथ उनके द्वारा किए जाने वाले सामान्य कार्य से भिन्न हो सकते हैं। ऐसा प्रत्येक शिक्षक विकलांग बच्चों के लिए जगह बनाने में एक उत्प्रेरक होता है जिससे कि ये बच्चे नियमित स्कूलों में समृद्ध जीवन जी सकते हैं और फलस्वरूप उन्हें समाज में उनका यथोचित स्थान मिल सकता है।

* बच्चों की पहचान सुरक्षित रखने के लिए नाम बदल दिए गए हैं।

पल्लवी दत्ता भोपाल में रहने वाली एक कंटेंट लेखिका हैं। शिक्षा से एक सॉफ्टवेयर विशेषज्ञ, पल्लवी वर्तमान में तकनीक और कहानी सुनाने की कला पर लिखती हैं। पल्लवी 'आरुषि' में स्वैच्छिक सेवा प्रदान करती हैं और वे उन आवाज़ों में से एक होने की उम्मीद करती हैं जो अविश्वसनीय कहानियाँ सुनाती हैं। उनसे *pallaveedutta@gmail.com* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : सुबोध जोशी **पुनरीक्षण :** भरत त्रिपाठी **कॉपी एडिटर :** अनुज उपाध्याय

सामाजिक न्याय | सीखने का केन्द्र

रागिनी ललित

कक्षा के भीतर भावनाएँ अक्सर एक अवरोध के रूप में देखी जाती हैं, जिन्हें या तो हाशिए पर ढकेल दिया जाता है या प्रभावी ढंग से नियंत्रित किया जाता है, ताकि सीखने-सिखाने के वास्तविक काम की ओर बढ़ा जा सके। वस्तुनिष्ठता और तर्क की बयानबाज़ी में भावनाएँ निचले स्थान पर चली जाती हैं और अक्सर 'ग़लत' निर्णय के लिए ज़िम्मेदार मानी जाती हैं। भावनाओं को कमतर करने का अर्थ है कि एक पारम्परिक कक्षा में अन्य की अपेक्षा कुछ ख़ास तरह के लक्षणों की ही सराहना की जाती है, जैसे कि सत्ता के प्रति आज्ञाकारिता या जैसे एक 'अच्छा व्यवहार' करने वाली ख़ामोश कक्षा एक आदर्श कक्षा समझी जाती है। फिर भी, हमारे दैनिक जीवन और कामकाज में हमें पता चलता है कि एक व्यक्ति की भावनाएँ न तो वैयक्तिक, विशिष्ट होती हैं न ही हमारे लिए कोई अनूठे अनुभव होती हैं और न ही वे तुच्छ होती हैं। विनन, वोर्शाम एवं अन्य विद्वानों के काम हमें यह पड़ताल करने के लिए बाध्य करते हैं कि भावनाएँ कैसे 'सामाजिक संरचनाओं और विश्वास प्रणालियों, अतीत और वर्तमान के लिए समाविष्ट सीखने के अनुभव' से जोड़ती हैं।' (विनन्स, 2012)

अगर हम विद्यार्थी जीवन के अपने अनुभवों को पलटकर देखें तो शायद हम यह पाएँगे कि हम क्या सीखते हैं, यह हम कैसे सीखते हैं, के अनुभव से गहरे जुड़ा हुआ होता है। ख़ासतौर पर ऐसी कक्षाओं में जहाँ मत विभिन्नता, सत्ता, 'अन्यत्व'(other hood) अथवा विशेषाधिकार पर चर्चा होती है, जहाँ विवादों के प्रति गहरी धँसी हुई धारणाओं और पूर्वानुमानों को चुनौती दी जा सकती है, तब वहाँ मज़बूत भावनाएँ जागृत होती हैं। ऐसा शायद इसलिए होता है क्योंकि विद्यार्थियों से व्यक्तिगत मुद्दे की पड़ताल करने को कहा जाता है और वह उनके जीवन के अनुभव और विश्वासों से इतना मूलभूत रूप से जुड़ा होता है कि उसे सवालों से परे समझा जाता है।

उदाहरण के लिए, हम 8-10 साल के बच्चों के साथ *इस्मत की ईद* (तूलिका बुक्स द्वारा प्रकाशित एक लोककथा जिसमें त्रासद-कॉमिक घटनाएँ घटित होती हैं) पढ़ते हुए बातचीत कर रहे थे। एक विद्यार्थी ने कहानी के पात्रों की तुलना उन 'पाकिस्तानियों से की जो इन दिनों चर्चा में हैं', 'जो परेशानी पैदा करते हैं', और 'जो बुर्क़ा पहनते हैं'। अपने मज़बूत विश्वास और उस समय ख़बरों में छाए कर्नाटक के स्कूलों में हिजाब प्रतिबन्ध की घटना के विषय पर अत्यन्त भावनात्मक निर्णय के कारण वह विद्यार्थी किसी अन्य सवालों के साथ जुड़ नहीं पा रहा था। इस तरह के सवाल जैसे कि 'तुम्हें कैसे लगता है कि वे पाकिस्तानी हैं? तुमने अपने जीवन में कभी किसी को हिजाब पहने देखा है?' इस आठ वर्षीय बच्चे के लिए थोड़ी-सी भी चुनौती देने पर एक 'अन्य' के प्रति उसके भावनात्मक रुख की निश्चतता बहुत मज़बूत रूप से सामने आई। समय के साथ, बहुत सावधानीपूर्वक पढ़ाई का सत्र व चर्चाओं को संचालित करते हुए शिक्षक एक समुदाय विशेष के प्रति कुछ बच्चों में धँसे इस 'अन्यत्व' के भाव के इर्द-गिर्द संवाद करने की कुछ जगह बना सके। यह स्पष्ट था कि कैसे भावनाओं को सामाजिक और ऐतिहासिक रूप से गढ़ा जाता है, उन्हें अमली जामा पहनाया जाता है और बेहद जटिल तरीक़े से उसे किसी के निर्णयों और विचारों के साथ बुना जाता है।

असुविधा को सम्बोधित करना

एक शिक्षक के रूप में हम एक सामाजिक-राजनीतिक व्यक्ति के रूप में अपनी भूमिका को देख सकते हैं। उम्मीद करते हैं कि हम विद्यार्थियों के लिए ऐसे अवसर और जगह बना पाएँगे जिससे वे मौखिक और लिखित भाषा में, अन्यायपूर्ण कार्यों और वर्तमान और अतीत की अनुचित नीतियों और इसके साथ ही पाठों पर सवाल खड़े कर सकेंगे। इस बात को ध्यान में रखते हुए, हमारी कक्षाएँ प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से इन मूल्यों को अपनाती हैं। जैसे समूह में एक-दूसरे का परस्पर सम्मान करना और सभी की राय को जगह देना, अपने उत्तरों में असहमतियों का सम्मान करना और संवाद करते हुए एक ऐसी जगह बनाना। लेकिन इस प्रकार के विचार और कार्य से भरी कक्षा में, एक सवाल अक्सर उठता है। सवाल है कि सभी सीखने-सिखाने वाले समुदाय के सदस्यों की देखभाल और ख़ुशहाली को केन्द्र में रखते हुए, हम सत्ता संरचनाओं और प्रमुख सांस्कृतिक धारणाओं द्वारा किए गए विश्लेषण से जुड़ी बातों से उत्पन्न बेचैनी से कैसे निपटेंगे?

उदाहरण के लिए, जब हम छोटे विद्यार्थियों से जेंडर पर बात करते हैं तो उस वक़्त यह अपरिहार्य है कि नियम क़ानूनों और रूढ़िबद्ध मान्यताओं से सम्बन्धित विवाद उपजेंगे। हम पितृसत्ता की उस विशाल संरचना पर भी बात करेंगे, जिससे

सभी घिरे रहते हैं। कुछ लोग इस तरह के विचार रखेंगे कि 'लड़के लड़कियों से ज़्यादा मज़बूत होते हैं।' अथवा फलाँ विशिष्टता 'ज़नाना' है या 'मर्दाना' है। इस विचार के साथ भी संघर्ष हो सकता है कि जिसे पूरी कक्षा 'लड़की' समझता है, लेकिन वह ख़ुद को ऐसा नहीं समझता/ समझती हो। छोटी कक्षाओं में पढ़ने वाले विद्यार्थियों से बातचीत करते समय इस विषय में काफ़ी कठिनाई हो सकती है। जैसा कि हम जानते हैं कि इस विषय में चर्चा करने और अभिव्यक्त करने का कौशल और योग्यता अभी भी विकसित हो रही है। और इस सन्दर्भ में दुनियावी ज्ञान (जो किसी ने बहुत आसानी से अनुभव किया होगा उससे अलग हो सकता है) का प्रतिरोध करने में बहुत अधिक असुविधाजनक भावनाएँ उत्पन्न हो सकती हैं। इस असुविधाजनक चीज़ को कैसे सम्बोधित कर सकते हैं जबकि हम अभी भी परवाह, प्यार और समता के आधार पर वैश्विक दृष्टिकोण बना रहे हैं?

9 से 14 साल की उम्र के एक समूह के साथ भाषा की कक्षाओं में पढ़ाते हुए मैंने ध्यान दिया कि अँग्रेज़ी की भाषा में व्यक्तिगत सर्वनामों (I, you, He, She, they etc) के विचार के इर्द-गिर्द हमारी बहुत-सी बातचीत उन संवादों के माध्यम से हुई जिनका उपयोग हम विभिन्न जगहों पर अपने रोज़ाना के जीवन में बहुत व्यक्तिगत रूप से करते हैं। हमारे समूह में कुछ ऐसे लोग थे जिनकी अपनी बस्ती में (जहाँ सुरक्षित स्थान पाना मुश्किल हो सकता है) और कक्षा में (जहाँ किसी के प्रति धारणा या राय बनने के मौके कम थे और वे अपने को व्यक्त कर सकते थे) अलग-अलग जेंडर पहचान थी। और कुछ ऐसे लोग भी थे जो अपनी जेंडर पहचान की परिवर्तनशीलता पर विचार कर सकते थे और यह भी देख सकते थे कि उनकी यह जेंडर पहचान किस हद तक सामाजिक रूप से निर्मित है। एक ऐसी कक्षा संस्कृति को निर्मित करने के लिए कुछ कहानियों ने हमारी बहुत मदद की, जहाँ भ्रमों का स्वागत किया जाता है, 'घबराहट' को सामूहिक रूप से सहारा दिया जाता है और जहाँ 'अस्त-व्यस्तता' स्वीकृत है। मैंने पाया *Guthli can Fly* (मुस्कान, 2019), *नवाब से नन्दिनी* (निरन्तर, 2006), *The Unboy Boy* (Pickleyolk Books, 2013), *अजूबा* (एकलव्य, 2018) जैसी समृद्ध और संवेदनशील कहानियों ने हमें ऐसे चरित्रों से मिलाया जो रूढ़िबद्ध मान्यताओं से टकराते हैं और अपने भीतर के सत्य को पा लेने से ख़ुश हैं। अपनी पहचान को लगातार घोषित करते हुए और अपनी भावनाओं के साथ बैठते हुए मैंने ध्यान दिया कि कुछ हफ़्तों के बाद समूह ख़ुद ही यह खोज लेते हैं कि उन्हें एक-दूसरे के लिए कौन-सा सर्वनाम इस्तेमाल करना है। कक्षा के बाहर भी वे एक-दूसरे को अपने जन्म/ वैधानिक नाम की जगह अपने चुने हुए नाम अथवा पसन्दीदा नाम से बुलाते हैं। उदाहरण के लिए, एक बच्ची जिसका नाम पूजा था, वह अपने लिए एक अलग जेंडर पहचान वाला नाम, अमन नाम चुन सकती थी।

अक्सर, सत्ता संरचनाओं के विश्लेषण का प्रतिरोध और कक्षा में प्रभुत्व वाले सांस्कृतिक विश्वासों को ख़त्म करने से मान्यता और देखभाल के लिए एक जटिल संकेत जाता है। परिणामस्वरूप वे स्वयं को ख़तरे में महसूस करते हैं। मेगन बोलर जैसे विद्वान अपने काम *'असुविधा का शिक्षणशास्त्र'* में यह मानते हैं कि करुणा और उम्मीद इसके महत्त्वपूर्ण पहलू हैं। असुविधा का शिक्षणशास्त्र 'बहुत गहराई से जुड़े भावनात्मक आयामों को चिन्हित करता है और उन पर प्रश्न करता है जो दैनिक आदतों, दिनचर्या और पदानुक्रम से अचेत सहभागिता को आकार देते हैं।' (बोलर, 2004, पृ-118)।

ऐसा करते हुए यह न केवल प्रभुत्व समूह के सदस्यों बल्कि हाशियाकृत संस्कृतियों को आमंत्रित करते हैं कि वे अपरिहार्य रूप से अन्तर्निहित प्रभुत्व वाले मूल्यों का पुनर्परीक्षण करें। अगर असुविधा के शिक्षणशास्त्र से किसी के वैश्विक दृष्टिकोण को छीन लिया जाता है (आलोचनात्मक शिक्षणशास्त्र के अनुसार टूटना और बिखरना आवश्यक है) तो करुणा में उस रिक्ति को कुछ नए से भरने की सम्भावना होती है। इस प्रकार, 'करुणा उन लोगों के बीच एक पुल है जो असुविधा के शिक्षणशास्त्र से पीड़ित हैं और जिन्होंने अपूर्णताओं से भरी दुनिया में पूरी तरह जीवित रहने के नए तरीकों को आमंत्रित किया है।' (बोलर, 2004, पृष्ट 129) इस पुल को बनाना शिक्षक के लिए उतना ही महत्त्वपूर्ण होना चाहिए जितना मौजूदा वास्तविकताओं पर आलोचनात्मक सवाल उठाना।

करुणा और उम्मीद

करुणा एक नई और अधिक समतामूलक और उम्मीद पर स्थापित न्याय संगत दुनिया की कल्पना के दरवाज़े भी खोलती है। अगर सीखने वाला समुदाय (कक्षा) सामूहिक रूप से और अपनी इच्छा से यह ढूँढ़ता है कि उनका विशेषाधिकार दूसरों की आज़ादी (या जिसे वे सत्ता की स्थिर और अपरिहार्य संरचना मानते हैं वह वास्तव में ऐतिहासिक और सामाजिक रूप से निर्मित है) की क़ीमत पर मिलता है, तब उम्मीद जगती है कि सामूहिक कार्रवाइयों के ज़रिए बदले हुए और साझे भविष्य की सम्भावना हमें इस तरह मदद कर सकती है कि हम सनक और आलोचना से परे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए हमारी कक्षा के विद्यार्थियों के परिवारों को, जो दिल्ली-हरियाणा की सीमा पर स्थित हैं, बेदख़ली के नोटिस से डराया जाता है। उस वक़्त वे अपने परिवार, अपने समुदाय और आज की इस बस्ती के बनने के इतिहास का दस्तावेज़ीकरण करने की प्रक्रिया में थे, उस वक़्त ज़्यादातर विद्यार्थी भयावह लगने वाले और अडिग सत्ता की संरचना के ख़िलाफ़ उम्मीद का

स्वर पाते हैं। इस तरह 'आलोचनात्मक उम्मीद' ही वह चीज़ है जो महज़ अच्छे दिनों का स्वप्न देखने से आगे जाकर सचेत तरीक़े से यह सोचना सिखाती है कि उस सामूहिक कार्रवाई के लिए कैसे काम किया जाए। (Freire et al, 2021)

ज़िम्मेदारियों की यह रूपरेखा हमें उस सामाजिक रिश्तों के जाल में एक स्थान प्रदान करती है, जहाँ हमारी कार्रवाइयों का एक मतलब होता है और उसके परिणाम होते हैं। इस तरह की उम्मीद कोई मासूम उम्मीद नहीं होती। इस उम्मीद का यह मतलब नहीं होता कि हम बिना सोचे-विचारे आशान्वित होते हैं या मामूली चीज़ों में भरोसा करते हैं या यह रटते रहते हैं कि 'सिर्फ़ कड़ी मेहनत ही सफलता दिला सकती है' या यह कह रहे होते हैं कि 'मेरे जैसे लोगों का यही नसीब है।' इसकी बजाय, हम दूसरों के साथ संवाद में जाते हुए वर्तमान को बदलने का प्रयास करते हैं। अन्यायपूर्ण परिस्थितियों को दूसरे सम्भावित भविष्य में बदलने का प्रयास करते हैं। उम्मीद कक्षा में एक-दूसरे में और साझे भविष्य में व्यक्तिगत तथा सामूहिक तौर पर बेहतरी का हिस्सा है। इस तरह से शिक्षा जो कि ताक़त देती है और मुक्त करती है, अपने मूल में उपचार भी करती है और परवाह और करुणा से हमें धारण भी करती है।

कुछ महीनों पहले बस्ती का 6 से 10 साल के बच्चों का एक समूह गणपति विसर्जन के एक जुलूस में शामिल होने के लिए काफ़ी उत्साहित था और सड़क पर लाउडस्पीकर के पीछे धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था। तभी उनके शिक्षक ने उनसे पूछा कि क्या वे गणपति विसर्जन का इतिहास जानते हैं? इसके परिणामस्वरूप जाति पहचान के आधार पर धार्मिक व्यवहारों पर चर्चा हुई – जैसे कुछ लोगों को देवताओं की मूर्तियों को छूने पर पाबन्दी क्यों है? और अन्त में इस सवाल पर चर्चा हुई कि यह धर्म आख़िर में किसका है। प्रभुत्व की व्यवस्था की पड़ताल करने की इस भावनात्मक इच्छा के साथ प्रत्येक के वैश्विक दृष्टिकोण को बदलने के कठिन काम में भी लगने के लिए शिक्षक की यह ज़िम्मेदारी है कि वह विद्यार्थियों के बीच संवाद और विश्वास क़ायम करे। कक्षा में उम्मीद, और ठोस रूप में कहें तो आलोचनात्मक उम्मीद, हमें यह याद दिलाती है कि आलोचनात्मक होना और करुणाशील होना साथ-साथ ही चलता है।

निष्कर्ष

कक्षा में सामाजिक न्याय के विचारों, आलोचनात्मक उम्मीद, करुणा के प्रति एक सामान्य प्रतिक्रिया से बच्चों को सुरक्षित करने की एक चाहत होती है। यह 'मासूमियत' या 'भोलेपन' के रूप में बचपन के बारे में एक प्रमुख धारणा से आती है। इसी तरह, एक वयस्क के रूप में हमारी यही अवधारणा होती है जब हम बच्चों के साहित्य या बच्चों की फ़िल्म के बारे में चर्चा करते हैं या जब हम 'बच्चे-हितैषी' के सम्बन्ध में चर्चा करते हैं। बच्चों के बारे में समझी गई मासूमियत को किसी भी तरह की विषयगतता की कमी की अवधारणा के रूप में चिन्हित किया जाता है।

बच्चों की किताबों को अक्सर इस तरह देखा जाता है कि वे बहुत 'साधारण' हों, बच्चों के कोरे मस्तिष्क के लिए एक रैखिक आख्यान हों जिसे हिंसा, गाली-गलौज या किसी भी तरह के संरचनात्मक संघर्ष से बचाया जाना चाहिए। वयस्क द्वारा लिखे गए बच्चों के साहित्य में नैतिक शिक्षा की ध्वनि बहुत आम होती है। फिर भी, बच्चों के पास संघर्षों का अनुभव होता है और वे हमारे साथ रोज़ाना के जीवन के सभी बदसूरत और ख़ूबसूरत पलों में जीते हैं। बच्चों का अनुभव एक समान और सामान्य होने की बजाय प्रायः गहरे रूप में राजनीतिक होता है। इस आशा में कि बच्चों को कुछ ख़ास यथार्थ से बचाया जाए प्राथमिक स्कूलों में हमारा प्रयास यह रहता है कि हम बच्चों से कठिन वार्तालाप को नज़रअन्दाज़ करें। हालाँकि यह रुख ख़ासतौर से उस समय दिशाभ्रमित हो सकता है, जब हम हाशिए के समुदायों से आने वाले विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हैं, जिनका जीवन दमन के ख़िलाफ़ संघर्षों की एक निरन्तरता ही होता है। इन विद्यार्थियों की ज़रूरत वास्तविक ज़िन्दगी से भागने की नहीं होनी चाहिए जहाँ वे अपनी भौतिक परिस्थितियों को न बदल सकें बल्कि उस यथार्थ को पहचानने की होनी चाहिए जो उनके सामने खड़ी है और उन हथियारों को समझने की होनी चाहिए जिसका इस्तेमाल करके वे एक अलग भविष्य की ओर बढ़ सकें। इस तरह करुणा और आलोचनात्मक उम्मीद, उस वैश्विक दृष्टिकोण को तोड़ने, जिसकी आलोचनात्मक शिक्षा हमसे माँग करती है और प्यार, न्याय, समता और संवाद की बुनियाद पर आधारित सम्भावित भविष्य को गढ़ने के बीच एक पुल का काम करती है।

References

Boler, M. (2004). Teaching for Hope: The Ethics of Shattering World Views. In Teaching, Learning and Loving Reclaiming Passion in Educational Practice (pp. 114–129). Routledge Falmer

Freire, P. Freire, A M A, Barr, R R, & Giroux, H.A (2021). Pedagogy of Hope: Reliving Pedagogy of the Oppressed

Hooks, Bell. (2003). Teaching Community: A Pedagogy of Hope. Routledge

Winans, A E (2012). Cultivating Critical Emotional Literacy: Cognitive and Contemplative Approaches to Engaging Difference. College English, Volume 75, No. 2, (pp. 150–170). National Council of Teachers of English

रागिनी ललित की रुचि बच्चों और युवाओं के लिए उम्मीद और करुणा पर टिके आलोचनात्मक शिक्षण की जगह को निर्मित करने के लिए अन्वेषण करने में है। वह विशेष तौर पर शिक्षा में बच्चों के साहित्य और प्रस्तुति कला के इस्तेमाल में रुचि रखती हैं। वह इस समय अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय बेंगलूरु में 'इंटरेस्ट ग्रुप फॉर डायलॉग फर्टीनिटी एंड जस्टिस' में रिसर्च एसोसिएट के रूप में काम कर रही हैं। उनसे *ragini.lalit06@gmail.com* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : मनीष आज़ाद **पुनरीक्षण :** जितेन्द्र 'जीत' **कॉपी एडिटर :** अनुज उपाध्याय

क्लासरूम विथ अ व्यू नोट्स फ्रॉम द कृष्णमूर्ति स्कूल्स | पुस्तक समीक्षा

अंकुर मदान

अश्विन प्रभु द्वारा लिखी गई *क्लासरूम विथ अ व्यू : नोट्स फ्रॉम द कृष्णमूर्ति स्कूल्स* देखने में आकर्षक किताब है। ख़ूबसूरत ढंग से डिज़ाइन की गई और परम्परागत ढर्रे से अलग लेआउट वाली इस किताब में अध्यायों के अन्त में श्वेत-श्याम तस्वीरों के साथ शिक्षा पर जे. कृष्णमूर्ति के उद्धरण दिए गए हैं। यह सब तुरन्त आपका ध्यान खींचता है और आपको इस किताब को उठाने के लिए प्रेरित करता है। सम्भव है कि इस किताब की सरल भाषा पाठकों के एक बड़े वर्ग को आकर्षित करेगी, ख़ासकर शिक्षक, पालक और स्कूल प्रशासक।

अश्विन प्रभु कृष्णमूर्ति की शिक्षाओं से प्रेरित होकर और स्वयं के स्कूली शिक्षा के अनुभव पर चिन्तन करके कॉर्पोरेट कैरियर छोड़कर कृष्णमूर्ति फ़ाउंडेशन इंडिया (केएफ़आई) स्कूल में पढ़ाने के लिए आए। अश्विन यहाँ ख़ुद को सूत्रधार कहते हैं। यह किताब केएफ़आई समूह के शैक्षणिक संस्थानों को राह दिखाने वाले दर्शन और उसके अनुरूप सामने आने वाली प्रक्रियाओं को समझते-सिखाते बिताए गए उनके पाँच सालों के अनुभव का अभिवादन प्रतीत होती है।

किताब में सबसे आगे 'What is school a place for'

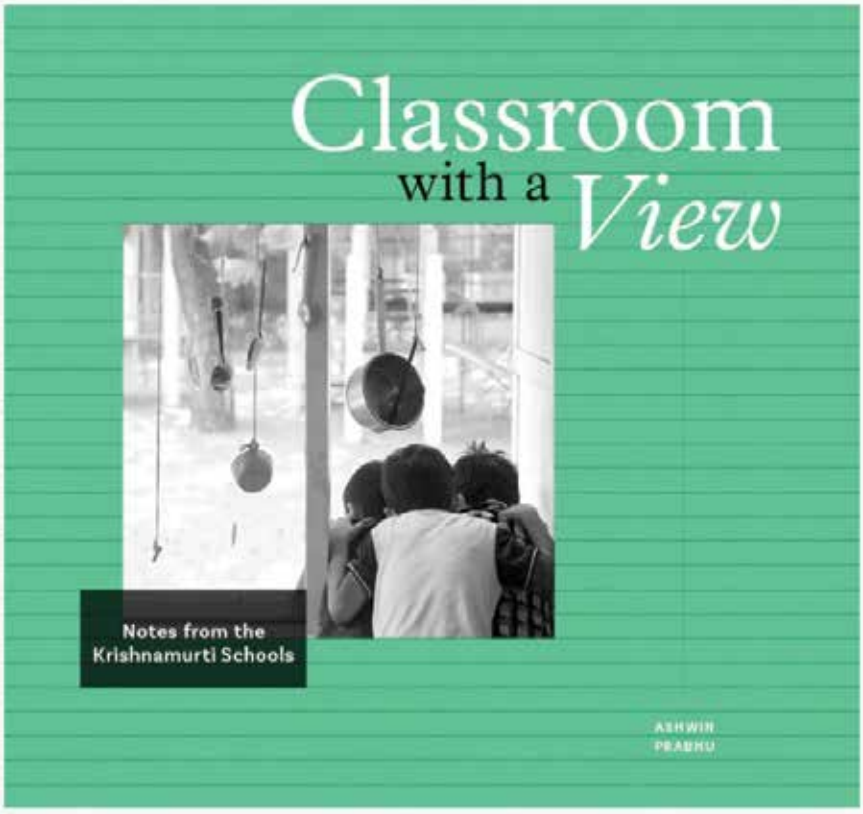

Title: Classroom with a View: Notes from the Krishnamurti Schools
Author: Ashwin Prabhu
Publisher: Tara (April 2022)
Language: English
Paperback: 224 pages
ISBN-13: 978-8195317356
Price: INR 800

यानी स्कूल किसलिए होता है का सवाल रखकर लेखक हमें इन प्रक्रियाओं तथा उनका मार्गदर्शन करने वाले कृष्णमूर्ति के शिक्षा-दर्शन के वर्णन की यात्रा पर ले जाते हैं। शिक्षकों और विद्यार्थियों के बीच के संवादों के रूप में कई क़िस्से, शिक्षकों द्वारा लिए गए अवलोकन और लेखक की टिप्पणियाँ इन वर्णनों को जीवन्त कर देते हैं।

तारा बुक्स की वी.गीता द्वारा की गई प्रकाशकीय टिप्पणी किताब में वर्णित प्रक्रियाओं के व्यापक उपयोग की वक़ालत करती है और उनके अनुसार ऐसा करने के लिए वैकल्पिक स्कूल के नेटवर्कों के साथ मिलकर कार्यशालाओं और संवादों के माध्यम से नियमित स्कूलों के शिक्षकों तक पहुँचा जाना चाहिए। वे इस आम धारणा को दूर करने की कोशिश करती हैं कि केएफ़आई स्कूल कुलीन-वैकल्पिक श्रेणी के स्कूल हैं और उनकी प्रक्रियाएँ नियमित स्कूल नहीं अपना सकते। वी. गीता की टिप्पणी में बच्चों के सीखने और उनकी शिक्षा पर कृष्णमूर्ति के व्यापक रूप से प्रशंसित विचारों को भी उजागर किया गया है, जैसे परिस्थितियाँ कुछ भी हों, सभी बच्चों के सीखने में भय, दण्ड और सत्ता के प्रभाव से मुक्ति, सबसे बुनियादी बात होती है। प्रभु भी इसी तरह का प्रयास प्रत्येक अध्याय के अन्त में करते हैं।

पहला अध्याय, जिसका शीर्षक 'Knowing Oneself' (स्वयं को जानना) है, कृष्णमूर्ति के शैक्षिक दर्शन के केन्द्रीय तत्व, आत्म-जिज्ञासा, के महत्त्व पर ध्यान केन्द्रित करता है। प्रभु अस्ताचल अर्थात 'पश्चिमी पहाड़ियों में डूबते सूरज को देखने' के अभ्यास का विस्तार से उल्लेख करते हैं जिसका पालन ऋषि वैली स्कूल में किया जाता है। एक सक्रिय दिन के बाद बच्चों और शिक्षकों, दोनों के लिए शान्ति या स्थिरता की ज़रूरत इस अभ्यास की बुनियादी बात है। एक साथ मिलकर मौन का अनुभव करना वास्तव में एक सुन्दर अभ्यास है जो बच्चों को अपने भीतर ध्यान केन्द्रित करने में मदद करता है। प्रभु वर्णन करते हैं कि शुरुआत में कैसे छोटे बच्चे इस अभ्यास से बचना चाहते हैं लेकिन बाद में धीरज से और निरन्तर मनाए जाने पर इस अभ्यास को महत्त्व देने लगते हैं। स्कूल की अन्य प्रक्रियाओं जैसे सर्कल टाइम और संस्कृति कक्षाओं का भी वर्णन किया गया है और बताया गया है कि ये प्रक्रियाएँ भी इसी उद्देश्य को पूरा करने के लिए हैं लेकिन बातचीत और संवाद के माध्यम से।

किताब का दूसरा अध्याय केएफ़आई स्कूलों में पर्यावरण (प्राकृतिक, भौतिक और सामाजिक) के अध्ययन को दिए जाने वाले महत्त्व को समर्पित है। प्रभु यहाँ 'क्षेत्र अध्ययन' की प्रक्रिया का वर्णन करते हैं जो सामाजिक विज्ञान के विषयों को पढ़ाने के लिए अपनाई गई सीखने की एक कार्यविधि है। प्रस्तावित पाठ्यपुस्तकों से परे जाकर समूह प्रोजेक्ट इस तरह तैयार किए जाते हैं कि वरिष्ठ विद्यार्थियों को अपने इलाक़े के एक भौगोलिक क्षेत्र का एक निश्चित समय तक अध्ययन करने का मौक़ा मिलता है। और यह अध्ययन वे बहु-विषयी दृष्टि के साथ अनुभवात्मक विधि का उपयोग करके करते हैं।

अध्ययन बनाम सीखने के द्विभाजन का उपयोग करते हुए लेखक अगले अध्याय में पहुँच जाते हैं जहाँ खोज, रचनात्मक सोच और बहुविषयी दृष्टिकोणों के माध्यम से वास्तविक दुनिया की समस्याओं को हल करने पर ज़ोर दिया गया है। इस अध्याय में 'डिज़ाइन लैब' के विचार का वर्णन किया गया और बताया गया है कि कैसे कक्षा में एक बच्चे के प्रश्न से स्कूल में इस्तेमाल के लिए साबुन बनाने के प्रोजेक्ट का रास्ता खुला। प्रभु निष्कर्ष निकालते हैं कि ऐसे प्रोजेक्ट ऐसी शिक्षा की तरफ़ ले जाते हैं जो मूर्त और अमूर्त, दोनों है। अमूर्त शिक्षा का महत्त्व इस अर्थ में है कि वह बच्चों को प्रतिस्पर्धा की भावना के बग़ैर किसी साझा लक्ष्य के लिए योगदान देने के प्रति प्रेरित करती है। शिक्षकों को लगता है कि ऐसे प्रोजेक्ट उन्हें बच्चों के व्यक्तिगत मज़बूत पक्षों और सीखने की शैलियों के लिए ज़रूरी स्थितियों को पूरा करने का मौक़ा देते हैं और उनके भीतर सहयोग व सहभागिता के मूल्यों को बैठाने का अवसर भी देते हैं। सहयोग और अनुभवात्मक अधिगम की यह भावना अगले अध्याय में भी देखने को मिलती है जहाँ लोक नृत्य और थिएटर जैसे विभिन्न कला रूपों के माध्यम से सीखने की प्रक्रिया को समझाया गया है और इन्हें सीखने के महत्त्वपूर्ण उपकरण के रूप में बताया गया है।

कृष्णमूर्ति ने कहा है, "कोई अपने बारे में सिर्फ़ रिश्ते के आईने में सीख सकता है।" किताब इस विचार पर आधारित प्रक्रियाओं के उदाहरणों से भरी पड़ी है - मिलकर ख़ाना खाने को दिया जाने वाला महत्त्व, सामुदायिक कार्य में बच्चों की भागीदारी और शारीरिक श्रम (रोटा प्रणाली के माध्यम से) को गरिमा देना, जिसमें सभी बच्चों से अपेक्षा की जाती है कि वे थालियाँ धोने और ख़ाना खाने की जगह को साफ़ रखने के कामों में भागीदारी करेंगे। ये सभी उदाहरण रिश्ते बनाने, परस्पर सम्मान और समुदाय की भावना के मूल्यों के साथ जुड़े महत्त्व की ओर इशारा करते हैं। प्रभु इन सारी प्रक्रियाओं का वर्णन बच्चों में संवेदनशीलता का विकास करने के साधन के रूप में करते हैं।

अन्तिम अध्याय व्यापक रूप से फैले भय के उस विचार की पड़ताल करता है, जो भारत के स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों में अलग-अलग रूपों से व्यक्त होता है। उदाहरण के रूप में लेखक पारम्परिक परीक्षा प्रणाली का उपयोग यह दिखाने के लिए करते हैं कि किस तरह बच्चे परीक्षाओं की ज़रूरत से ज़्यादा बड़ी बना दी गई छवि के कारण डर और तनाव का अनुभव करते हैं और इसका उनके सीखने के अनुभवों पर क्या असर पड़ता है। केएफ़आई स्कूलों में उपलब्धि से जुड़े

तनाव और भय को कम कर दिया गया है और इसके लिए ऐसी प्रक्रियाओं को अपनाया गया है जो पुरस्कारों और दण्ड को रोकती हैं। साथ ही कक्षाओं के संगठन और पाठ्यचर्या को तैयार करने में मिश्रित आयु समूह बनाने के तरीक़े को अपनाकर स्कूल के रोज़मर्रा के माहौल को प्रतिस्पर्धा और तुलना से मुक्त रखा गया।

एक पाठक के रूप में, यह किताब मुझे कई तरह से आकर्षित करती है। मुझे स्कूल में अपनाई जाने वाली प्रक्रियाओं के समृद्ध और सजीव वर्णन पढ़ने में बहुत मज़ा आया। इन्हें उदाहरणों व बच्चों और शिक्षकों के बीच के संवादों के साथ पेश किया गया है। किताब में वर्णित लगभग सभी प्रक्रियाएँ छोटे बच्चों की शिक्षा के बारे में मेरी अपनी मान्यताओं से मेल खाती थीं। इस तरह, पहली नज़र में तो यह किताब शिक्षा के एक दर्शन के अभ्यास में रूपान्तरित होने की प्रक्रियाओं के एक विस्तृत संकलन होने के उद्देश्य को प्राप्त करती है।

लेकिन एक शिक्षक के रूप में, जब इस किताब को पढ़ती हूँ तो मुझे कमियाँ दिखाई देती हैं। किताब में शैक्षणिक प्रक्रियायों का वर्णन कुछ हद तक अस्पष्ट है। इन्हें कृष्णमूर्ति के शैक्षिक दर्शन से निकली व्याख्याओं के रूप में समझाया गया है, लेकिन इनके पीछे के तर्क को समझाने का प्रयास आधा-अधूरा-सा लगता है, ख़ासकर ऐसे पाठक के लिए जिसके पास शायद उस शैक्षिक दर्शन की गहरी समझ न हो जिसका अनुमोदन ये प्रक्रियाएँ करती हैं। अगर इस किताब का उद्देश्य (जैसा कि लेखक और प्रकाशक ने दावा किया है) यह दिखाना है कि क्यों यह ज़रूरी नहीं है कि ये प्रक्रियाएँ वैकल्पिक स्कूली व्यवस्था की जागीर बनी रहें और इन्हें नियमित स्कूलों द्वारा अपनाया जा सकता है, तो किताब इस उद्देश्य को पूरा करने में नाकाम रही है।

मुझे यह भी लगता है कि लेखक शुरुआत में ही वैकल्पिक स्कूल व्यवस्था के अनुभव, उसके इतिहास और भारत के वर्तमान सन्दर्भ में उसकी प्रासंगिकता के बारे में और गहराई से बात कर सकते थे। किताब की अपील और सम्भावना हम मुख्यधारा के अधिकांश लोगों को यह विश्वास दिलाने की क्षमता में है कि हम नियमित स्कूल प्रणाली में इन प्रक्रियाओं को अपनाने की सम्भावनाओं को देख सकें। लेकिन ऐसा करने के लिए पहले वैकल्पिक स्कूली व्यवस्था के इर्द-गिर्द मौजूद रहस्यात्मकता को हटाने और उस सन्दर्भ को स्थापित करने की ज़रूरत है जिनमें ये प्रक्रियाएँ अपनाई गई हैं। मीनाक्षी थापन की *लाइफ ऐट स्कूल – ऐन एथनोग्राफ़िक स्टडी*, इस अर्थ में एक बेहतर आदर्श है, जो आन्ध्र प्रदेश के ऋषि वैली स्कूल के शिक्षकों व विद्यार्थियों के नज़रिए से कृष्णमूर्ति के दर्शन की एक गहरी, व्यक्तिपरक व्याख्या है।

एक पाठक के रूप में, मुझे केएफ़आई स्कूल के शिक्षक की छवि बना पाने में काफ़ी संघर्ष करना पड़ा। अगर हम इस बात को ध्यान में रखें कि वह किताब में वर्णित प्रक्रियाओं को क्रियान्वित करने में केन्द्रीय भूमिका निभाता है, तो कहना पड़ेगा कि उसके बारे में किताब में बहुत कम कहा गया है। कौन है यह व्यक्ति? इन शैक्षणिक आदर्शों को अपनाते और आत्मसात करते हुए कोई शिक्षक किस यात्रा से गुज़रता है? उसे किस तरह के संघर्षों, चुनौतियों और शंकाओं का सामना करना पड़ता है और आगे बढ़ते हुए वह उनसे किस तरह पार पाता है? इस सफ़र के दौरान उसके सीखने और विकास में मदद व सहयोग देने में संस्था क्या भूमिका निभाती है? काश कि किताब में एक अध्याय इन सवालों के जवाब देने के लिए होता। मेरे लिए इस किताब में केएफ़आई का शिक्षक लगभग एक आदर्श के रूप में सामने आता है, एक परिपूर्ण, पूरी तरह से तैयार अतिमानव जिसे लगभग हमेशा यह पता होता है कि उसे क्या करना है और उन कठिन सवालों से कैसे निपटना है जो बच्चे स्कूल में रोज़ पूछते हैं।

इसी क्रम में यह किताब स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों को एक जैसी सोच वालों और स्कूली प्रक्रियाओं द्वारा वांछित मूल्यों व सीखों को आत्मसात करने की एक जैसी क्षमता रखने वालों की तरह प्रस्तुत करती है। लेखक ने कुछ क़िस्सों का ज़िक्र किया है जब बच्चों ने इन प्रक्रियाओं पर सवाल उठाए हैं और यह भी बताया है कि किस तरह शिक्षक उनकी चिन्ताओं को दूर करने के लिए निरन्तर संवाद और तर्क का उपयोग करते हैं। पर क्या ऐसी कोई घटनाएँ नहीं हुई हैं जब किसी परिपक्व किशोर ने किसी प्रक्रिया का विरोध किया हो या उस पर सवाल उठाए हों या पालकों ने स्कूल की नीतियों पर असहमति जताई हो?

काश यह किताब हमें रोज़-ब-रोज़ इन शैक्षणिक आदर्शों को धरातल पर उतारने में सामने आने वाली चुनौतियों और असफलताओं की भी कुछ झलक देती। और यह बताती कि इनके चलते किस प्रकार इन प्रक्रियाओं में भी बीते सालों में कुछ संशोधन हुआ या उनकी पुनर्व्याख्या हुई। बेहतरीन प्रक्रियाओं को क़रीब-क़रीब सिर्फ़ सफलता की कहानियों के रूप में प्रस्तुत करने का यह एकरंगी नज़रिया इस तरह की प्रकृति वाली किताब की अकादमिक सम्भावना के साथ न्याय नहीं करता। इन प्रक्रियाओं के प्रति एक ज़्यादा गहरा, आलोचनात्मक और विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण शिक्षकों को इस किताब का सार्थक ढंग से उपयोग करने में मदद कर सकता था। यह किताब उनके लिए उनके अपने परिवेशों में इन विचारों के सम्भावित उपयोग के आकलन का साधन बन सकती थी।

अन्त में, मुझे लगता है कि यह किताब उन प्रक्रियाओं का पर्याप्त विस्तार से वर्णन करती है जो मूलतः जे. कृष्णमूर्ति के बेहद गहरी समझ देने वाले शिक्षा-दर्शन से निकली हैं और यह दर्शन देश की स्कूली शिक्षा के प्रति प्रगतिशील दृष्टिकोण के साथ मेल खाता है। भारत के स्कूल, चाहे उनकी सम्बद्धता और सन्दर्भ कुछ भी हो, इस शैक्षणिक दर्शन और किताब में वर्णित मूल्यों व प्रक्रियाओं में हुए इसके रूपान्तरण के बारे में जानने से बहुत लाभ उठा सकते हैं।

स्कूल को हमें एक ऐसी जगह बना पाना चाहिए जहाँ बच्चे इस भय के बिना आएँ कि उनके बारे में क्या राय बनाई जाएगी या उन्हें तुलनाएँ झेलनी पड़ेंगी, जहाँ सौन्दर्य की समझ व सराहना करने वाले मूल्य विकसित किए जाएँ। बच्चों को अपने समुदाय के प्रति संवेदनशील बनाया जाए और वास्तविक दुनिया की समस्याओं का उपयोग विज्ञान और सामाजिक विज्ञान पढ़ाने में किया जाए। यह सब उन शैक्षणिक छलाँगों के उत्कृष्ट उदाहरण हैं जो देश में शैक्षणिक सुधार करने के लिए हमें लगानी पड़ेंगी। हालाँकि यह किताब इस बात को अच्छे ढंग से सामने रखती है। लेकिन शिक्षकों व स्कूल प्रमुखों को इन प्रक्रियाओं को अपनाने से पहले इनके पीछे के बुनियादी विचारों तथा उनके सामने आ सकने वाली कठिनाइयों व चुनौतियों के बारे में एक गहरी समझ ज़रूर विकसित करनी चाहिए। इनके क्रियान्वयन के लिए शिक्षक, माता-पिता, बच्चे और समुदाय - सभी हितधारकों की तैयारी और तत्परता आवश्यक है और उतना ही आवश्यक है उपलब्ध संसाधनों का उचित आकलन। लेकिन मैं यह भी कहना चाहूँगी कि शैक्षणिक सुधारों को निरन्तरता में देखना, एक ऐसी यात्रा के रूप में देखना जिसके यात्री हम भी बन सकते हैं, बहुत ज़रूरी है और इसकी शुरुआत करने के लिए कभी कोई आदर्श समय या तैयारी का उपयुक्त स्तर नहीं हो सकता।

अंकुर मदान अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलूरु में पढ़ाती हैं। वे बाल-विकास और समावेशी शिक्षा में शिक्षण और शोध कार्य करती हैं। उनसे *ankur.madan@apu.edu.in* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : अन्जू दास मानिकपुरी **पुनरीक्षण :** भरत त्रिपाठी **कॉपी एडिटर :** अनुज उपाध्याय

अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी लर्निंग कर्व के पुराने अँग्रेज़ी अंक
https://azimpremjiuniversity.edu.in/learning-curve से डाउनलोड किए जा सकते हैं।

पत्रिका के हिन्दी और कन्नड़ा अंक या उनके लेख
https://anuvadasampada.azimpremjiuniversity.edu.in/ पर उपलब्ध हैं।

अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी लर्निंग कर्व पत्रिका की प्रति सब्सक्राइब/प्राप्त करने के लिए आगे दी गई लिंक पर दिए गए फार्म को भरकर भेजें :
https://bit.ly/3SS3kNG

अपने सुझाव, टिप्पणियाँ,मत और अनुभव हमें इस ईमेल पते पर भेज सकते हैं :
learningcurve@apu.edu.in

मुद्रक तथा प्रकाशक मनोज पी. द्वारा अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन फॉर डेवलपमेंट के लिए
आदर्श प्रा.लि., 4 शिखरवार्ता,प्रेस काम्पलेक्स, जोन-1,एम.पी.नगर, भोपाल 462 011 से मुद्रित

एवं अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, सर्वे नम्बर 66,बुरुगुंटे विलेज,बिक्कनाहल्ली मेन रोड, सरजापुरा,बेंगलूरु,कर्नाटक - 562 125 से प्रकाशित
मुख्य सम्पादक : प्रेमा रघुनाथ

Azim Premji University

Anuvada Sampada

अनुवाद सम्पदा

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय की अनुवाद रिपॉज़ेटरी

अवधारणाओं तथा विचारों के साथ गहराई से जुड़ने हेतु विद्यार्थियों और शिक्षकों के लिए भारतीय भाषाओं में उच्च गुणवत्ता के 2000 से अधिक शैक्षणिक संसाधनों का भण्डार।

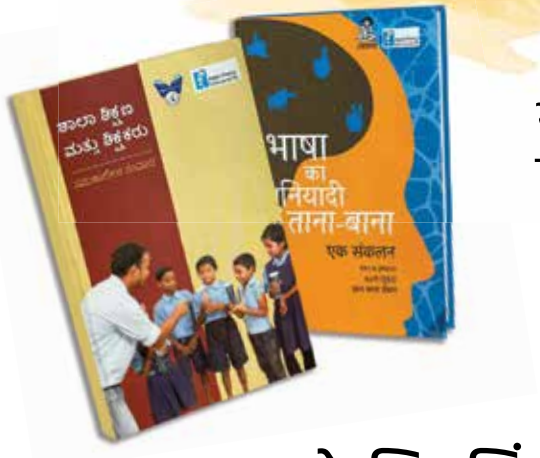

भारतीय भाषाओं में शैक्षणिक संसाधनों के लिए निशुल्क, ओपन-एक्सेस पोर्टल

- पुस्तकें और पुस्तक अंश
- अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के प्रकाशनों से लेख
- विभिन्न संगोष्ठियों और रीडरों से चुनिन्दा लेख

अनुवाद सम्पदा के लिए लिंक :
https://anuvadasampada.azimpremjiuniversity.edu.in/

Faculty Positions

Azim Premji University

Applications are invited for faculty positions in the domain of Education.

The M.A. Education programme has requirements for faculty positions in the following areas:

- Early Childhood Education
- Philosophy of Education
- Mathematics Education
- Child Development and Learning

Scan to know more.

Bhopal

APPLY NOW

To know more, visit https://azimpremjiuniversity.edu.in/jobs/faculty-positions-in-education

अगला अंक

कहानी सुनाना शैक्षणिक दृष्टिकोण के रूप में

Azim Premji University
Survey No. 66, Burugunte Village
Bikkanahalli Main Road, Sarjapura
Bengaluru 562125, Karnataka

080-6614 4900
www.azimpremjiuniversity.edu.in

Facebook: /azimpremjiuniversity
Instagram: @azimpremjiuniv
Twitter: @azimpremjiuniv